महाभोज में सामाजिक चेतना

(एम० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

मंजुलता

शोध - निर्देशक

डॉ० बी० एम० चिन्तामणि

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

1986

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
भारतीय भाषा केन्द्र

नया महरौली मार्ग
नई दिल्ली-110067

दिनांक - 24.12.86

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती मंजुलता बोहरा द्वारा प्रस्तुत "महाभोज में सामाजिक चेतना" शीर्षक लघु शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य विश्वविद्यालयों में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह सर्वथा मौलिक है।

अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ० चिन्तामणि
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

विषय सूची

क्र0सं0		पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय		
	हिन्दी कथा साहित्य का विकास	1
(क)	कथा साहित्य के विकास के चरण	1
(ख)	नई कहानी आन्दोलन	6
(ग)	मन्नू भण्डारी का स्थान	8
(घ)	सामाजिक चेतना का आशय	11
द्वितीय अध्याय		
	मन्नू भण्डारी के उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय	16
(क)	एक इन्च मुस्कान	17
(i)	कथावस्तु	17
(ii)	मूल्यांकन	19
(ख)	आपका बंटी	21
(i)	कथावस्तु	21
(ii)	मूल्यांकन	27
(ग)	महाभोज : संक्षिप्त परिचय	35
(घ)	निष्कर्ष	37

तृतीय अध्याय

"महाभोज" उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 39

(क) भारत में स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक विकास और उसके अन्तर्विरोध 39

(ख) रचना की आधार भूमि 52

चतुर्थ अध्याय

महाभोज में व्यंजित राजनीति का विद्रूप 58

(क) पृष्ठभूमि 58
(ख) राजनैतिक दलों की भूमिका 63
(ग) राजनैतिक नेताओं का चरित्र 71

(i) दा-साहब 71
(ii) सुकुल बाबू 74

पंचम अध्याय

महाभोज में व्यंजित समाज का स्वरूप 78

(क) सामाजिक स्वरूप 78

(i) वर्गीय संघर्ष 80
(ii) जातीय व क्षेत्रीय द्वन्द 82
(iii) सामाजिक कुरीतियों, विसंगतियों आदि पर दृष्टि 88

(ख) महाभोज में मन्नू भण्डारी का सामाजिक चिन्तन 92

उपसंहार 96

मन्नूजी से एक बातचीत 98

भूमिका

शोध का वर्तमान स्वरूप अपनी वैज्ञानिकता के बावजूद आरोपों के घेरे में है । आमतौर पर लोगों को यह कहते सुना जा सकता है कि वर्तमान शोध की सार्थक उपलब्धियां न के बराबर हैं । एक ही बात को कई तरह से, कई विषयों के अन्तर्गत कह-सुनकर शोधकार्य की इतिश्री मान लेने की परिपाटी आम होती जा रही है । वस्तुत: ये आरोप निराधार नहीं कहे जा सकते । इनमें दम है । दरअसल इसके लिए दोषी वह पूरा ढाँचा है जिसके अन्तर्गत अकादमिक जगत की इन प्रक्रियाओं का चक्कर लगाना अनिवार्य है ।

शोधकर्ता की भी अपनी कुछ मजबूरियां होती हैं । शोध के दौरान बहुत सी ऐसी बातें, जिन्हें कहने की प्रबल लालसा शोधकर्ता में उठती हैं, लेकिन बावजूद इसके कुछ कह पाना इसलिए संभव नहीं हो पाता क्योंकि शोध की अपनी कुछ सीमाएं होती हैं । हालांकि यह सीमा रेखा खींचने वाले विद्वान भी कहीं न कहीं इस बात से जरूर सहमत होते हैं कि शोध की वर्तमान प्रणाली में संशोधन अपेक्षित है ।

शोध-प्रणाली पर ज्यादा बहस करने का मेरा कोई उद्देश्य नहीं है, बल्कि मेरा उद्देश्य संक्षेप में उन मूलभूत बातों की तरफ इशारा करना है जिनसे आज पूरा शोध जगत जूझ रहा है । मेरा प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध महाभोज में सामाजिक चेतना, मैं नहीं कह सकती कि शोध जगत में की गई

कोई क्रांति है । लेकिन, विनम्रता पूर्वक इतना जरुर कहूँगी कि विषय से संबंधित पूरे चिन्तन-मनन के दौरान मेरी दृष्टि शोध के परम्परागत ढाँचे से लगातार टकराती हुई एक नये रास्ते की तलाश करती रही है । इस तलाश में पुस्तकों की जिल्दों में कैद नियमों में से क्या छूटा और नया क्या जुड़ा इसका निर्णय सुधी सुविज्ञजन ही बेहतर ढंग से कह सकेंगे ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध को स्पष्टता की दृष्टि से पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है जिनके माध्यम से "महाभोज" की सामाजिक चेतना से जुड़े सवालों के बारे में चिन्तन को क्रमबद्ध किया गया है ।

हिन्दी साहित्य के विकास के कई स्तर रहे हैं । आधुनिक काल एक नई चेतना से लैस होकर अपनी अनेक विधाओं सहित सामने आया । खड़ी बोली के गद्य साहित्य का विकास इस काल की एक महत्वपूर्ण घटना है । अपने पूरे तेवर के साथ गद्य की समूची सामर्थ्य को अभिव्यक्त करता हुआ कथा साहित्य विकसित होता है । इस विकासक्रम की ताजा तरीन और अपने दौर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेखिका मन्नू भण्डारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । मेरा पहला अध्याय "हिन्दी कथा-साहित्य का विकास" कथा साहित्य जन्म से लेकर मन्नू भण्डारी तक की कथायात्रा को रेखांकित करता है । शीर्षक के प्रमुख अंश "सामाजिक चेतना का आशय" इसीक्रम में स्पष्ट किया गया है ।

दूसरे अध्याय में मन्नू जी के रचनात्मक साहित्य का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है । इसमें मुख्य रूप से "एक इन्च मुस्कान" "आपका बंटी" और "महाभोज" का कथासार देते हुए रचनात्मकता की जांच की गई है । इसके अलावा कहानियों और शेष लघु उपन्यासों पर भी संक्षेप में विचार किया गया है ।

आजादी के बाद के भारत में हुए परिवर्तनों जिनका सम्बन्ध परिवार से लेकर राष्ट्र तक से है, को मन्नू जी ने अपनी रचनात्मक ऊर्जा के रूप में इस्तेमाल किया है। अतः इसके साहित्य की परख के लिए "भारत में स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक विकास और उसके अन्तर्विरोधों" को भी समझना जरूरी है। तीसरे अध्याय में इन्हीं मुद्दों पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

मन्नू भण्डारी के उपन्यास "महाभोज" में आजादी के बाद का भारतीय समाज और इसी के साथ पैदा हुए जनतंत्र और उसकी गोद में पनपने वाले राजनीतिक भ्रष्टाचार का स्वरूप अपनी पूरी शक्ति के साथ उभर कर सामने आता है। चौथा अध्याय महाभोज में व्यक्त राजनीतिक चेतना और पाँचवा अध्याय महाभोज की सामाजिक चेतना के साथ-साथ मन्नू भण्डारी के सामाजिक चिन्तन के विश्लेषण से सम्बन्ध है।

इस पूरे प्रयास की सार्थकता के विषय में मेरा कुछ कहना बड़बोलापन होगा। लेकिन, साथ ही यह कृतघ्नता भी होगी कि इस पूरे प्रयास में जिन लोगों ने लगातार मेरा सहयोग किया उनके प्रति आभार न व्यक्त करूँ।

मेरे शोध-निर्देशक प्रो० बी०एम० चिन्तामणि ने अपनी गंभीर अस्वस्थता के बावजूद सम्यक् निर्देशन करते हुए मेरा मार्ग-दर्शन किया और डॉ० मैनेजर पाण्डेय और प्रो० नामवर सिंह ने बीच-बीच में मेरे कार्य को त्रुटियों के प्रति सचेत किया। इन समस्त गुरुजनों के प्रति मैं सादर कृतज्ञ हूँ।

इनके अतिरिक्त मेरे विभिन्न सहपाठियों ने इस कार्य को पूरा करने में सहयोग दिया। इनमें विशेष रूप से श्री शैलेन्द्र श्रीवास्तव का महत्वपूर्ण सहयोग रहा जिन्होंने पूरे शोध कार्य के दौरान विभिन्न स्तरों पर सुझाव दिया। इनके अलावा श्री उदयभान दुबे, रुस्तम राय, राजकुमार

तथा सुजाता राय ने भी यथासंभव सहयोग दिया ।

और अन्त में मैं मेरी सास व पति के प्रति कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे भरपूर सहयोग दिया ।

दिनांक - 29.12.86
नई दिल्ली

मंजुलता

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य का विकास

(क) कथा साहित्य के विकास के चरण

हिन्दी के कथा-साहित्य का विकास 20वीं शताब्दी में हुआ । ऐसे तो उपन्यास व कहानियाँ लिखने के प्रारम्भिक प्रयास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही देखने को मिलते हैं । लेकिन सच्चे अर्थों में प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी कथा साहित्य कौतूहल, रहस्य, रोमांच और तिलस्म की दुनिया में उलझा हुआ था । इसका ज्वलन्त प्रमाण देवकीनन्दन खत्री के "चन्द्रकान्ता" व "चन्द्रकान्ता सन्तति" उपन्यासों के सन्दर्भ में हमें मिलता है । द्विवेदी युग में पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप कथा साहित्य का विकास होने लगा था । उपन्यास के क्षेत्र में जिस तिलस्मी और अय्यारी उपन्यासों की परम्परा को देवकीनन्दन खत्री ने प्रारम्भ किया, उसे किशोरी लाल गोस्वामी, गोपाल राम "गहमरी" श्रद्धा राम फुल्लौरी आदि लेखकों ने आगे बढ़ाया ।

हिन्दी कथा - रंगमंच पर प्रेमचन्द के आगमन के साथ ही कहानी और उपन्यास को एक नई जमीन मिली । प्रेमचन्द के पूर्व रहस्य, रोमांच तथा सामाजिक जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं को लेकर कहानियाँ एवं उपन्यास मिलते थे । जिनमें आर्य समाज का सुधारवादी स्वरूप तथा नवजागरण की भावना का भी कहीं पुट मिलता था । प्रेमचन्द के पूर्व जो अन्य उपन्यासकार थे तथा जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे, उनमें अयोध्या सिंह उपाध्याय, राधिका रमण प्रसाद सिंह, लज्जाराम शर्मा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । आलोच्य काल के प्रसिद्ध लेखक किशोरी लाल गोस्वामी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से जीवन का आदर्श प्रेम, विधवाओं की समस्या, समाज में

वेश्याओं की दयनीय जिन्दगी आदि का चित्रण किया । इस प्रकार हम देखते हैं कि एक तरफ द्विवेदी युगीन कथा साहित्य में सामाजिकता की एक क्षीण धारा के साथ-साथ जासूसी तिलस्मी उपन्यासों की प्रवृति दिखाई पड़ती है । उस समय कई एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये, जिनमें किशोरी लाल गोस्वामी का "हृदयहारणी" उपन्यास महत्वपूर्ण है ।

द्विवेदी युग में हिन्दी कहानी का विकास होता है । हिन्दी कहानियों के विकास को तीन कालों में बाँटकर देख सकते हैं ।
§1§ द्विवेदी युग §2§ प्रेमचन्द युग §3§ प्रेमचन्द उत्तर काल
सच पूछा जाय तो हिन्दी कहानी का वास्तविक शुरूआत द्विवेदी युग में होती है । कुछ लोग इंसा अल्लाखाँ लिखित "रानी केतकी की कहानी" को हिन्दी की पहली कहानी कहते हैं तो कुछ दूसरे लोग राजा शिव प्रसाद सिंह "सितारे हिन्द" कृत "राजा भोज का सपना" की चर्चा करते हैं । लेकिन इन दोनों में से किसी भी कहानी को हिन्दी की पहली कहानी नहीं माना जा सकता । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ० श्री कृष्ण लाल, किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी "इन्दुमती" को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं । परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल यह भी स्पष्ट करते हैं कि बंग महिला की कहानी "दुलाई वाली" पर यदि किसी बंगला कहानी की छाया न हो तो उसे हिन्दी की पहली कहानी मान सकते हैं । द्विवेदी युग में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी एक मात्र ऐसे कहानीकार हैं जो तीन ही कहानियां लिखकर हिन्दी कथा साहित्य में अमर हो गए । "उसने कहा था" इनकी सर्वाधिक चर्चित कहानी है । उसी समय प्रसाद जी की "ग्राम" कहानी "इन्दु" पत्रिका में छपी थी तथा श्री राधिका रमण प्रसाद सिंह की "कानों में कंगना" कहानी काफी चर्चित हुई थी ।

जैसा की पहले स्पष्ट किया गया है कि हिन्दी कथा - रंगमंच पर प्रेमचन्द के आगमन के साथ ही कथा साहित्य को एक नई जमीन मिली । प्रेमचन्द ने द्विवेदी युगीन आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर मोड़ा ।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक रचनाओं में द्विवेदी युगीन सुधारवाद की झलक दिखाई पड़ती है परन्तु उनकी परवर्ती रचनाओं में यथार्थ की पकड़ मजबूत होती जाती है जिसका स्पष्ट रूप उनके उपन्यास "गोदान" और उनकी कहानी "कफन" और "पूस की रात" में दिखाई पड़ता है । डॉ० लाल साहब सिंह ने लिखा है कि प्रेमचन्द काल में सुधारवादी दृष्टिकोण को यथार्थ और कलात्मक भूमियों पर उतारा गया है । जिसे वह अधिक स्वभाविक, विश्वसनीय और व्यापक स्वरूप धारण करता हुआ चला गया । प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में जहाँ समाज का यथार्थवादी स्वरूप प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर उसे एक आदर्श से भी सम्बन्धित कर दिया है । उनके साहित्य में व्याप्त यही यथार्थ, आदर्श से मिल कर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद बन गया । प्रेमचन्द के महत्व पूर्ण उपन्यासों में "सेवा सदन" "प्रेमाश्रम" निर्मला" "रंगभूमि" "कायाकल्प" "गबन" "कर्म भूमि" और "गोदान" विशेष उल्लेखनीय है । प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, निराला, कौशिक, जैनेन्द्र, वृंदावनलाल वर्मा, भगवती चरण वर्मा, सियाराम शरण गुप्त, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि महत्वपूर्ण हैं इन उपन्यास-कारों ने जीवन की सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों का मूल विषय बनाया है । अधिकांश उपन्यासों में आर्थिक असमानता, नारी-असमानता, विधवा-विवाह, बाल-विवाह, दहेज, सूदखोरी आदि का चित्रण किया गया है । प्रेमचन्द युग के सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक कृति "गोदान" है जिसमें प्रेमचन्द ने भारतीय समाज विशेषकर किसान जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया है । प्रेमचन्द का यह एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है जो हिन्दी ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय उपन्यास साहित्य की अमूल्य निधि है । इसमें "होरी" और "धनिया" के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय किसान मजदूर वर्ग की दशा का बेबाक चित्रण किया गया है । इसी उपन्यास में प्रेमचन्द की कला परिपक्व होती है ।

प्रेमचन्द युग में उपन्यास के साथ-साथ कहानी का भी अभूत-पूर्व विकास हुआ है । इस युग में कहानी दो धाराओं में बंटी दिखाई पड़ती है । आलोचक इन धाराओं को प्रेमचन्द - स्कूल और प्रसाद - स्कूल के नाम से सम्बोधित करते

हैं । कहानियों की यथार्थवादी परम्परा की शुरूआत प्रेमचन्द ने की थी । इस परम्परा को आगे बढ़ानेवाले कहानीकारों में रांगेयराघव, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, पाण्डेय, बेचन शर्मा, "उग्र" हैं । कहानियों की दूसरी धारा भाववादी है, जिसके जनक "प्रसाद" जी थे । उस धारा को आगे बढ़ाने का कार्य जैनेन्द्र, अज्ञेय, और इलाचन्द जोशी के द्वारा सम्पन्न होता है । इन लोगों के अतिरिक्त चण्डी प्रसाद हृदयेश, विनोदशंकर व्यास, चतुरसेन शास्त्री, भगवती प्रसाद वाजपेयी, राजा राधिका रमण सिंह, प्रेमचन्द की धारा से प्रभावित कहानीकार थे । पहली बार हिन्दी कहानी में किसानों और मजदूरों की आवाज को प्रेमचन्द ने मुखरित किया । एक तरह से हिन्दी कहानी प्रेमचन्द युग में गाँव की ओर पहली बार मुड़ी । उदाहरण स्वरूप प्रेमचन्द की "ईदगाह" "पंचपरमेश्वर" "पूस की रात" "दो बैलों की कथा" "ठाकुर का कुआं" आदि कहानियों को देख सकते हैं । प्रेमचन्द युगीन कहानियों में देश सुधार, ग्राम-सुधार, समाज-सुधार, नारी उत्थान, सत्याग्रह, सेवा त्याग, शोषण, अत्याचार का विरोध आदि गांधीवादी अथवा मानवतावादी तत्वों का दर्शन होता है । प्रेमचन्द युग में ही कथा साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन का प्रयोग मिलता है । यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, भगवत शरण उपाध्याय आदि कहानीकारों ने कहानी में मार्क्सवादी जीवन दृष्टि को विकसित किया ।

प्रेमचन्द काल : प्रेमचन्द तक आते-आते हिन्दी कथा साहित्य प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त कर चुका था । जरूरत इस बात की थी कि उसे एक नई दिशा दी जाय । प्रेमचन्द के बाद दुर्भाग्य से कथा क्षेत्र में मनोविश्लेषण वादियों का वर्चस्व कायम हो गया, जिस की अगुआई जैनेन्द्र कर रहे थे । जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी आदि कथाकारों ने मनोविज्ञान को आधार बनाकर उपन्यास और कहानियां लिखीं । ये लोग सामाजिक सन्दर्भों से कट कर एक दूसरे मन:लोक में खो गये । जैनेन्द्र के "सुनीता" और "त्याग पत्र" अज्ञेय का "शेखर एक जीवनी" इलाचन्द-जोशी के "सन्यासी" आदि उपन्यासों में मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण का सुन्दर प्रयोग मिलता है । इन लोगों ने प्रेमचन्द द्वारा प्रवर्तित कथा परम्परा को मनोविश्लेषण की खाई में धकेल दिया । लेकिन उसी समय यशपाल, अमृतलाल नागर,

विष्णु प्रभाकर जैसे कथाकार भी थे जो कहानी और उपन्यास को सामाजिक जीवन से जोड़ने के पक्षधर थे ।

आजादी के बाद न केवल राजनीतिक स्थिति में बदलाव आया बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी काफी परिवर्तन हुए । हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में नई कहानी आन्दोलन के रूप में पहले कथा आन्दोलन की शुरुआत हुई । नये कहानीकार अपने पूर्ववर्ती कहानीकारों की कथ्यगत एवं शिल्पगत कमजोरियों से परिचित हो गये थे । एक कहानीकार पुरानी घिसीपिटी अन्तर्वस्तु और शिल्प की जगह नई अन्तर्वस्तु, भावभूमि और शिल्प का प्रयोग कर रहे थे । आजादी के बाद कविता के क्षेत्र में नई कविता तथा कहानी के क्षेत्र में नई कहानी आन्दोलन चलाये गये । नऐ कहानीकारों में अमरकान्त, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा कई नाम उभर कर आये । नई कहानी के बाद अ-कहानी सचेतन कहानी सक्रिय कहानी समान्तर कहानी और समकालीन कहानी आन्दोलन चलाये गये इन आन्दोलनों से कहानी की क्षति और विकास दोनों हुआ ।

आजादी के बाद हिन्दी उपन्यासों का भी तीव्रगति से विकास हुआ । रेणु के "मैला आंचल" "परती परिकथा" आदि उपन्यासों में आजाद भारत के गांवों की बनती-बिगड़ती, टूटती-बिखरती जिन्दगी का चित्र खींचा गया है । आजादी के बाद उभरेवाले अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी, श्री लाल शुक्ल, काशीनाथ सिंह आदि महत्वपूर्ण हैं ।

---

§ii§"नई कहानी" का आन्दोलन

आजादी के बाद नई कहानी आन्दोलन का प्रारम्भ 1950 के आस-पास हुआ । कुछ आलोचकों की राय में नई कहानी की शुरूआत भैरव-प्रसाद गुप्त के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका -"नई कहानी" 1954 से हुई । नई कहानी का आन्दोलन अनायास ही नहीं शुरू हुआ । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की परिस्थियों ने करवट बदली और नई परिस्थितियों में नई कहानी का जन्म हुआ । नई कहानी की भूमिका में कमलेश्वर ने लिखा है कि देश की बौद्धिक चेतना और जनमानस वोझिल थे । राजनीतिक उपलब्धियों के पश्चात सांस्कृतिक संकट का वह समय हर क्षण एक नया प्रश्न पेश कर रहा था । हर व्यक्ति, व्यक्तिगत रूप में अपनी जिन्दगी के लिये नये मानमूल्यों की स्थापना चाहता था, पर सामाजिक स्वीकृति के लिए दूसरों का मुँह जोहता था । हर तरफ एक संकट व्याप्त था । वैयक्तिक और सामाजिक आचरण के दो मानदण्ड बने हुए थे और वे मूल्य, जो बहुसंख्यक व्यक्तियों द्वारा पोषित थे, सामाजिक सम्बन्धों के स्तर पर अपनी सार्थक स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे ।[1] इन्ही परिस्थितियों में नई कहानी आन्दोलन की शुरूआत हुई । कहना न होगा की इन नये कहानीकारों ने अपनी पूर्ववर्ती कहानीकारों के भावबोध के खिलाफ पुराने मूल्यों की जगह नये मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिये नई कहानी आन्दोलन का प्रारम्भ किया।नई कहानी में भाव-बोधवभाषा दोनों स्तरों पर काफी परिवर्तन आया । नई कहानियाँ प्रेमचन्द युगीन कहानियों की भाव संवेदना से अलग आधुनिकता बोध की कहानियाँ थी, जिनमें अजनबीपन, संत्रास, कुंठा, उब उदासी, टूटन, बिखराव, खोखलापन, विद्रोह, यंत्रणा, पीड़ा, आविष्कार, अकेलापन, अजनवीपन, मृत्यु बोध आदि को अभिव्यक्ति हुई । नई कहानी की

---

1. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर

शुरूआत के साथ-साथ ग्रामीण जीवन की कहानी की पुनः प्रतिष्ठा हुई । शिवप्रसाद सिंह की "दादी मां" कहानी ग्रामीण जीवन की प्रतिनिधि कहानी है । इस तरह हिन्दी की नई कहानी में गाँवों की समस्याओं से जुड़ी कहानियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं जिसका प्रतिनिधित्व शिवप्रसाद सिंह अपनी कहानियों के माध्यम से कर रहे थे । रेणु की अधिकांश कहानियां ग्राम जीवन और वहाँ की समस्याओं को आधार बना कर लिखी गई हैं । रेणु की "तीसरी कसम" हो या "रस प्रिया" हो या उनकी अन्य कहानियाँ हो, उन सब में आजादी के बाद भारत के गांवों में आने वाले परिवर्तनों का चित्र मिलता है । नई कहानी की प्रगतिशीलधारा का प्रतिनिधित्व अमर कान्त, भीष्म साहनी और शेखर जोशी जैसे कहानीकार कर रहे थे। इन लोगों की कहानियों में सामाजिक जीवन का यथार्थ अभिव्यक्ति पा सका है । इन लोगों ने अपने को सिर्फ स्त्री-पुरूष के संबंधों तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि व्यापक सामाजिक सन्दर्भों में मनुष्य को देखने-दिखाने की कोशिश की है । दूसरी तरफ निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, जैसे नऐ कहानीकार हैं जो कहानी को व्यक्तिगत सम्बन्धों तक सीमित कर देते हैं ।

नई कहानी के विकास में महिला कहानीकारों का विशेष योगदान है । नई कहानी के दौर में जिन महिला कहानीकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें उषाप्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नूभण्डारी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उषा प्रियंवदा की कहानी "वापसी" को लेकर प्रारम्भ में काफी चर्चा रही । कई आलोचकों ने इसे नई कहानी का प्रारम्भ माना है । इसके विषय में डॉ0 नामवर सिंह ने लिखा है कि "वापसी" के बारे में कई तरह की आपत्तियां उठाई गई हैं किसी के अनुसार यह असंगतिपूर्ण अवास्तविक फार्मूलाबद्ध एवं भारतीय वातावरण में अकेलेपन की विदेशी "थीम" को बिठाने की असफल कोशिश है तो किसी के अनुसार "वह लगभग चौथाई सदी पुरानी है और उस वक्त यह कहानी "गुलामी" नाम से छपी थी जिसके लेखक हैं राजेन्द्र सिंह

बेदी ।" [1] उषा प्रियंवदा के अतिरिक्त कृष्णा सोबती ने भी कई महत्वपूर्ण कहानियां लिखी हैं जिनमें "यारों के यार" और "मित्रो मरजानी" काफी चर्चित हुई हैं। मन्नू भण्डारी का नई कहानी में योगदान अन्य महिला कहानीकारों से अत्यधिक है । मन्नू भण्डारी की कहानी "यही सच है" में आधुनिक जीवन के प्रेम त्रिकोण को अभिव्यक्ति मिली है । मन्नू भण्डारी की कहानियों में यथार्थ के अनेक आयाम मिलते हैं । उनका यह यथार्थ जीवन का गतिशील यथार्थ है । मन्नू भण्डारी के यथार्थ के बारे में चंचल चौहान ने लिखा है कि मन्नू भण्डारी यथार्थ के ऐसे टुकड़े चुनती हैं जो हमारे परिवेश के किसी भी हिस्से का यथार्थ हो सकते हैं । वे उस टुकड़े को सभी आयामों से देख-परख कर कहानी में बदलती हैं और उसे विश्वसनीय यथार्थ की तरह चित्रित करती हैं । वह हमारा जाना-पहचाना यथार्थ लगता है ।[2] इस छोटी टिप्पणी में उनके द्वारा विभिन्न कहानियों में चित्रित सामाजिक यथार्थ का जायजा नहीं लिया जा सकता । उनकी यथार्थ की इस पकड़ को "तीसरा हिस्सा" कहानी में देख सकते हैं । इस तरह मन्नू भण्डारी नई कहानी में यथार्थवादी परम्परा को मजबूत करने में योगदान देती है । उनकी इस यथार्थ चेतना को "त्रिशंकु" की कहानियों में सहज ही देखा जा सकता है ।

(ग) मन्नू भण्डारी का स्थान

डॉ० बंसीधर, डॉ० राजेन्द्र मिश्र ने लिखा है "मन्नू भण्डारी समकालीन कथा और नाट्य साहित्य में मानव-जीवन की अन्तर्मुखी स्थितियों और परिवेशगत विद्रूपताओं को उभारने और अंकित करने में अप्रतिम स्थान रखती है । उनके उपन्यासों में "आपका बंटी" कहानी साहित्य में कुछ प्रतिनिधि कहानियां और उनका अकेला नाटक "बिना दीवारों के घर" इसके प्रमाण हैं ।" [3]

---

1. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह, पृ०-200
2. चंचल चौहान - मूल्यांकन, पृ०-।।।.
3. डॉ० बंसीधर, डॉ० राजेन्द्र मिश्र - मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ०- भूमिका.

कथा साहित्य का अब तक का विकास क्रम देखने के साथ मन्नू भण्डारी के सर्जनात्मक साहित्य पर डॉ0 बंशीधर की यह टिप्पणी मन्नू भण्डारी को समकालीन कथा साहित्य में सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। हालांकि इन्होंने मन्नू भण्डारी के उपन्यास "आपका बंटी" को श्रेष्ठ मानते हुए अपना निष्कर्ष दिया है किन्तु यह निष्कर्ष अधूरा है। "आपका बंटी" उपन्यास निहायत व्यक्तिगत समस्याओं को लेकर लिखा गया है जिसमें एक बच्चे के माध्यम से आधुनिक परिवार की तनाव युक्त स्थिति का चित्रण किया गया है। वैयक्तिक समस्याओं के स्थान पर यह उपन्यास सफल कहा जा सकता है लेकिन जहाँ तक सम्पूर्ण सामाजिक धरातल की बात है, इस आधार पर श्रेष्ट उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। इसलिये कोई भी निर्णय सामाजिकता के आधार पर ही किया जा सकता है।

"महाभोज" सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों का एक सशक्त दस्तावेज है। इस उपन्यास की शक्ति इसकी सामाजिकता में निहित है। मन्नू भण्डारी की पूरी विचार सरणी को इस अकेले उपन्यास में देखा जा सकता है। यह अकेला उपन्यास हमारे वर्तमान समाज के राजनैतिक भ्रष्टाचार को उजागर करने में पूरी तरह कामयाब है। यही वजह है कि इस उपन्यास के आधार पर मन्नू भण्डारी समकालीन कथा साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उनका शेष साहित्य मूल्यांकन की कसौटी से बाहर कर दिया जाय। उनकी कहानियों व शेष उपन्यासों का स्थान भी अन्य रचनाकारों की तुलना में कहीं ज्यादे महत्वपूर्ण है।

विशेषकर महिला कथाकारों का जिक्र आने पर मन्नू जी एकाएक अपनी एक अलग पहचान बना लेती है। उषा प्रियंवदा को ही अगर ले तो उनकी कहानियों का मूल स्वर अलगाव के दर्शन से जुडा हुआ है। पूरे समाज में एक तरह के अलगावयुक्त कुंठा का चित्रण उषा प्रियंवदा की सम्पूर्ण कथा यात्रा में देखा जा सकता है। इसकी वजह उनके प्रवासी जीवन के वे अनुभव जो उन्होंने प्रवास के

दौरान प्राप्त किये हैं। "वापसी" कहानी से चर्चित होने वाली उषा प्रियंवदा बार-बार वहीं वापस लौटती हुई दिखाई पड़ती है जहाँ से उन्होंने शुरूआत की थी। इनसे अलग मन्नूजी के लेखन में एक लगातार विकास देखा जा सकता है जो हिन्दी कथा साहित्य के विकास में भी सहयोग देता चलता है।

****

§घ§ सामाजिक चेतना का आशय

किसी भी साहित्यकार की सामाजिक चेतना के संदर्भ का विश्लेषण वर्तमान आलोचनात्मक विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। किसी भी साहित्यकार को सही-सही समझने के लिए विशेष रूप से उसके सर्जनात्मक साहित्य की परख के लिए उसकी सामाजिक चेतना की गहराई को ठीक-ठीक ढंग से जानना जरूरी हो जाता है। मन्नू भण्डारी के उपन्यास "महाभोज" का विश्लेषण करने के लिए भी उसकी सामाजिक चेतना का विश्लेषण सबसे अहम् सवाल के रूप में सामने आता है। "आज जबकी साहित्य की साहित्यिकता और साहित्य की सामाजिकता" दोनोंकेहिफाजत की बात जोरशोर से आलोचकों के बीच में मान्यता प्राप्त करती जा रही है यह सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है कि साहित्य की साहित्यिकता तो जरूरी है मगर सामाजिकता की बात कहाँ तक संगत है ?[1]

वस्तुतः इस विरोधाभास की वजह साहित्य के उन दो ऐबों में खोजी जा सकती है जिनसे दो भिन्न दृष्टिकोणों का विकास हुआ है। पहली दृष्टि "कला कला के लिए" की समर्थक है तो दूसरी दृष्टि "कला जीवन के लिए" की।कला को महज कला तक सीमित करने वालों की लम्बी परम्परा है जो संस्कृत साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य के वर्तमानदौर तक प्रभावी है। यह अलग बात है कि यह प्रभाव जनता पर क्रमशः अपनी पकड़ खोता जा रहा है। इसकी वजह यह भी हो सकती है कि कलावादियों की वह असलियत है जो साहित्य को महज साहित्यिक उपादानों के कटघरे में कैद करने की पक्षधर है। उसका सौन्दर्य बोध कोरे मनोरंजन से विकसित हुआ सौन्दर्य बोध है जिसका असर सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में शून्य है।जनता की समझ में यह आ चुका है। साहित्य के प्रति दूसरा दृष्टिकोण साहित्य को समाज के लिए समर्पित एक ताकत के रूप में देखता

---

1. मैनेजर पाण्डे - साहित्य और इतिहास दृष्टि

है । इनका मानना है कि साहित्य कोरे मनोरंजन की चीज नहीं है । साहित्य वह गोली भी नहीं है जो दीन-दुनियां से बेखबर करके चैन की नींद सुला दे क्यों कि वर्तमान समय को देखकर साफ-साफ कहा जा सकता है कि "अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है ।" ।

देखा जा सकता है,साथ ही साथ गंभीरता पूर्वक महसूस भी किया जा सकता है कि साहित्य को जीवन से जोड़कर जीवन के सुख दुःख का हिस्सा बनाना सामाजिक परिवर्तन में बेहद प्रासंगिक और समीचीन है । सामाजिक परिवर्तन से इनका आशय कमजोरों, दलितों और पीड़ितों की दशा में परिवर्तन से है । यह परिवर्तन तभी संभव है जबकि यह वर्ग उस प्रक्रिया को समझे जिसकी वजह से उसका शोषण होता रहा है । साथ ही उन तरीकों को भी जानें जिसके माध्यम से वह शोषक ताकतों के खिलाफ संघर्ष कर सके और अपना हक हासिल कर सके । इन समझ को पैदा करने में सामाजिक राजनैतिक आन्दोलनों की तरह ही साहित्यिक आन्दोलनों की भी अपनी विशेष भूमिका होती है । कोई जरूरी नहीं है कि सामाजिक राजनैतिक आन्दोलनों से किसी तरह की जागृति आऐ या जनता असलियत को पहचान सके।और बहुत संभव है कि सांस्कृतिक आन्दोलन सोई हुई जनता को जगा दे और उसमें वह विवेक पैदा कर दे जो दलितों के बेहतर भविष्य का कारण बन जाए । सवाल जनता के प्रति ईमानदारी का है । संभव है कि सामाजिक राजनैतिक आन्दोलन जनता के प्रति उतने ईमानदार न हो जितनी ईमानदारी सांस्कृतिक आन्दोलन में हो । बात को सही तरीके से प्रमाणित करने के लिए दो विपरीत उदाहरण पर्याप्त होंगे ।

1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस हिन्दुस्तान की आजादी के लिए बनायी गई थी किन्तु इसके चरित्र की सही पहचान नहीं हो पाई थी । यह माना जाता रहा कि यह देश को आजाद कराऐगी मगर बुद्धिजीवियों में यह

---

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार, पृष्ठ - 25

खोज बराबर बनी रही कि कांग्रेस का चरित्र ब्रिटिश सत्ता से गठबन्धन करने वाला ही चरित्र है । पट्टाभि सीतारमैया ने कांग्रेस का इतिहास लिखते हुए इसी बात का खुलासा किया है ।

दूसरी तरफ हम 14वीं शताब्दी के क्रान्तिधर्मी कवि कबीर को ले सकते हैं । कबीर के समय कोई पार्टी तो न थी । सामन्ती व्यवस्था जरूर थी । उस समय का साहित्यकार जहाँ धार्मिक कथाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किये था वहीं कबीर ने इनसे अलग हटकर पौराणिक कथाओं की जगह अपने समय के समाज की कथा अपने दो टूक लहजे में कहनी शुरू की । नतीजतन समाज का एक पूरा वर्ग कबीर का समर्थक हुआ और अंध विश्वासों, ढकोसलों के खिलाफ एक स्वर बन सका । कहना न होगा कि कबीर जैसे अनपढ़ व्यक्ति का यह ओजस्वी स्वर किसी आरोपित दर्शन से विकसित नहीं हुआ था । यह दर्शन समाज के प्रति कवि के समर्पण और व्यक्ति के प्रति कवि की चिन्ता से विकसित हुआ था ।

अगर 14वीं शताब्दी आगे आवे तो आधुनिक युग में भी रूस मे गोर्की, चीन में लूशुन , फ्रांस में बाल्जाक और हिन्दुस्तान में मुंशी प्रेमचन्द का साहित्य इस बात का जीता-जागता प्रमाण है कि सांस्कृतिक आन्दोलन राजनैतिक आन्दोलन को किस हद तक प्रभावित करने के साथ ही साथ दिशा निर्देश भी देता है । जबकि कलावादियों का साहित्य इस तरह की कोई भी परिवर्तन की भूमिका का निर्वहन करने में असमर्थ रहा है, इस बात के जीवन्त प्रमाण मौजूद हैं । विषयान्तर होने के भय से इस विषय पर मैं विस्तार में न जाना ही उचित समझती हूं । वैसे भी कलावादियों के खोखलेपन से आमतौर पर साहित्य जगत बखूबी वाकिफ है ।

चेतना : अंग्रेजी में चेतना शब्द के लिए कोन्सशनेस (Consciousness) शब्द का प्रयोग किया जाता है । इसके अलावा "अन्डरस्टेन्डींग" और "सेन्स" शब्द भी प्रयुक्त किये जाते हैं मगर यह बहुत ज्यादा उचित नहीं है । संस्कृति में चेतना का आशय बुद्धि, मनोव्यक्ति, स्मृति या संज्ञा (होश) से होता है । इस शाब्दिक अर्थ बोध के पश्चात यह सवाल उठता है कि व्यवहार में सामाजिक

चेतना का आशय क्या है ? इस व्यवहारिकता का निर्धारण करने के लिए शब्द अर्थ बोध आधार का काम तो कर सकता है किन्तु प्रायोगिक अर्थ का नियामक नहीं हो सकता । अत: शाब्दिक अर्थ के आधार पर ही सामाजिक चेतना को इस तरह से समझा जा सकता है कि समाज से आशय मनुष्यों के उस संगठित समूह से है, जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समाज का गठन करता है और उसमें पारस्परिक सहयोग और समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जीवन जीता है तथा चेतना से आशय उस संज्ञानात्मक मनोवृत्ति से है जो व्यक्ति को सोचने समझने और निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है। सामाजिक चेतना का सम्पूर्ण आशय एक व्यवस्थित मानव समूह की उस जागरूकता से है जो समाज को देखने और समझने के बाद विकसित होती है और उसका उपयोग भी समाज के लिए किया जाता है । डॉ0 रत्नाकर के अनुसार "पशुओं से भिन्न अर्थात जनसमूह अथवा जन समाज की ज्ञानात्मक मनोवृत्ति का नाम सामाजिक चेतना है ।" [1]

जब भी समाज में कोई नई विचारधारा प्रवेश करती है तो अपने शक्तिशाली तत्वों के माध्यम से धीरे-धीरे वह सामाजिक स्तर पर व्यापकता प्राप्त करने लगती है और इस प्रकार क्रमश: वह सामाजिक विचार-धारा में पर्यवसित होती है यह सामाजिक विचारधारा सामाजिक परिवर्तन का कारण बनती है । परिवर्तन समाज का नियम है यह परिवर्तन वैचारिक प्रभाव के फल स्वरूप उत्पन्न सामाजिक जागृति से संभव होता है । परिवर्तन के लिये तैयार समाज एक नई चेतना से लैस होता है । यही नई चेतना सामाजिक चेतना होती है ।

किसी मनुष्य की चेतना उसकी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है । सामाजिक चेतना की प्रमुख रूप से तीन विशिष्टताऐं लक्षित की जा सकती हैं । भारतीय दार्शनिकों ने इस सच्चिदानन्द

---

1. डॉ0 रत्नाकर पाण्डे - सामाजिक चेतना, 1976

कहा है अर्थात् यह क्रमशः ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक होती हैं, चेतना के तीन स्तर माने जाते हैं चेतन, अवचेतन और अचेतन। चेतन स्तर पर वह सभी बातें हुआ करती हैं जिनके द्वारा व्यक्ति सोचता, समझता और कार्य करता है। अवचेतन में वे बातें हुआ करती जो कभी व्यक्ति में रह चुकी होती हैं और जिन्हें वह भूल चुका होता है तथा जो कोशिश करने पर भी स्मरण न होती है। जो अनुभूतियां एक बार चेतना में आई रहती हैं वे कभी अवचेतन कभी अचेतन में चली जाती हैं।

साहित्य और समाज के अभिन्न आपसी रिश्ते के कारण साहित्य के क्षेत्र में साहित्यकार की सामाजिक चेतना अपना विशेष स्थान रखती है। कहा जा सकता है कि किसी साहित्यकार के रचना कार्य का सही विश्लेषण उसकी सामाजिक चेतना का ही विश्लेषण है।उसकी सामाजिक चेतना को समझे बिना किसी भी सहीमूल्यांकन की अपेक्षा करना व्यर्थ है। यह बात मन्नू भण्डारी के संदर्भ में भी पूरे तौर पर सच है। प्रस्तुत शोध में "महाभोज" की सामाजिक चेतना के अन्वेषण की बात इस महत्व को ध्यान में रखकर ही प्रमुख रखी गई है।

****

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

मन्नू भण्डारी के उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय

मन्नू भण्डारी के कृतित्व का सर्वाधिक जाना-पहचाना पक्ष उनकी कहानियों का है । कहानियों के माध्यम से उन्होंने अपनी बात को बड़े ही सशक्त तरीके से कहा भी है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि मन्नू भण्डारी एक सशक्त कथा लेखिका हैं और उनके मूल्यांकन के सिलसिले में इसकी उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ा जा सकता है । कम समय में नए कहानीकारों में अपना विशिष्ठ स्थान बना लेना उनके कृतित्व के इस पक्ष की जीवंतता को ही रेखांकित करता है । "मैं हार गई" से शुरु हुई उनकी कहानी-यात्रा "तीन निगाहों की तस्वीर" "यही सच है" "एक प्लेट सैलाब" और "त्रिशंकु" से होती हुई आज भी जारी है जो हिन्दी साहित्य को समर्थ बना रही है । यह उनके कृतित्व का एक पक्ष है ।

मन्नूजी के कृतित्व का दूसरा पक्ष उपन्यास साहित्य से सम्बद्ध है । एक श्रेष्ठ कहानीकार होने के साथ ही साथ उपन्यासकार के रूप में भी उनकी श्रेष्ठता असंदिग्ध है । अभी तक उन्होंने पाँच उपन्यासों की रचना की है जो क्रमशः "एक इन्च मुस्कान" (सन् 1961), "आपका बंटी" (सन् 1971), "महाभोज" (सन् 1979), "कलवा" (बाल उपन्यास), और "स्वामी" है । इनमें चार उपन्यासों को छोड़ पाँचवे उपन्यास "कलवा" को बाल उपन्यास कहा जाता है । इनका उपन्यास "स्वामी" बंगला के प्रसिद्ध कथाकार शरत्चन्द चट्टोपाध्याय की एक कहानी पर आधारित फिल्म स्क्रिप्ट ही है । उस पर "स्वामी" नाम की फिल्म भी बन चुकी है ।[1] इस तरह देखा जा सकता है कि इनके मौलिक एवं

---

1. नन्दिनी मिश्र - मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य, पृ॰- 15 ; 1984

प्रौढ़ उपन्यास "एक इन्च मुस्कान""आप का बंटी" और "महाभोज" तीन ही हैं । इनमें महाभोज श्रेष्ठतम है तथा इसी उपन्यास ने मन्नूजी के सामाजिक सोच और वैचारिकता को काफी उजागर भी किया है ।

(क) एक इन्च मुस्कान

एक इन्च मुस्कान मन्नू भण्डारी का पहला उपन्यास है जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन जनवरी सन् 1961 से दिसम्बर 1961 तक क्रमिक किस्तों में "ज्ञानोदय" पाक्षिक पत्रिका में हुआ था । पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन इसके बाद में हुआ । उपन्यास में लेखक के नाम में राजेन्द्र यादव का नाम भी मन्नूजी के साथ है। इससे मालूम होता है कि राजेन्द्र यादव एवं मन्नू भण्डारी दोनो की यह सम्मिलित कृति है । किन्तु इस उपन्यास की कथावस्तु स्वतन्त्र रूप से मन्नू-भण्डारी की ही थी। एक तरह का प्रयोग करने के उद्देश्य से इस उपन्यास के पुरुष चरित्रों विशेषत: अमर से सम्बन्धित अंशों के विकास की जिम्मेदारी राजेन्द्र यादव ने ली तथा नारी पात्रों से जुड़े अंशों के लेखन का दायित्व मन्नूजी ने ग्रहण किया । बड़े ही साफ़ ढंग से देखा जा सकता है कि इस उपन्यास में मन्नूजी द्वारा चित्रित अंश कहीं ज्यादा सार्थक एवं प्रभावी हैं । डॉ० सावित्री सिन्हा ने बड़े साफ ढंग से स्वीकार किया है कि "एक इन्च मुस्कान" में मन्नू जी द्वारा लिखित अंश उनकी प्रखर क्षमता और गहरी दृष्टि का परिचय देते हैं ।"[1]

(i) कथावस्तु - "एक इन्च मुस्कान" का प्रधान पुरुष पात्र अमर है जो एक प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है । वह सामाजिक सन्दर्भों में जीने की बजाय अपने मानसिक धरातल पर ही जीवन बिताने का आदी रहा है । उपन्यास की प्रधान महिला पात्र रंजना अत्यन्त सरल हृदय की नारी है जिसमें समर्पण की भावना प्रमुख है, वह अमर की खूबियों को तो जानती ही है किन्तु विशेष बात

---

1. डॉ० सावित्री सिन्हा - हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, नागरी प्रचारिणी सभा .

यह है कि उसके व्यक्तित्व के कमजोर पक्षों को जानते हुए भी वह अमर से प्रेम करती है । इतना ही नहीं अमर से उसका प्रेम इस स्तर तक है कि वह अपने माता-पिता और घर तक छोड़ने में भी संकोच नहीं करती है । अमर भी रंजना को अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा समझता है और यही कारण है वह रंजना से विवाह करने की इच्छा रखता है ।

इसी दौरान अमर की मुलाकात अपनी एक प्रशंसिका अमला से होती है । अमला पति द्वारा त्यागी गई एक ऐसी महिला है जो उच्च वर्गीय विसंगतियों से प्रताड़ित है । यही नहीं उसमें अहंबोध का तीखापन भी मौजूद है । वह अमर के शुभचिन्तक के रूप में उसे विवाह किए बिना स्वतन्त्र जिन्दगी जीने की सलाह देती है । इस सलाह के पीछे उसका तर्क है कि ऐसा करने पर उसका साहित्य धर्मी व्यक्तित्व कहीं ज्यादा प्रखर और निखरे हुए रूप में साहित्य जगत में प्रकाशित हो सकेगा, अमर के जीवन में यह सलाह एक खास तरह के असन्तोष को जन्म देती है अमर अपने खास मित्र टंडन और उसकी पत्नी मंदा के आग्रह की इज्जत करते हुए रंजना से विवाह तो कर लेता है किन्तु अमला की सलाह को वह भूल नहीं पाता है । नतीजतन उसका वैवाहिक जीवन उसके लिये सन्तोष देने की बजाय असन्तोष की वजह बन जाता है उसे हमेशा यह अहसास होता रहता है कि उसकी सर्जनात्मक चेतना कहीं न कहीं दब सी गई है और उसका लेखन वैसा नहीं हो पाता जैसाकि होना चाहिए ।

अपने इस अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में जहाँ एक ओर उसे रंजना के सर्वसमर्पण का अहसास बना रहता है वही दूसरी ओर वह यह भी महसूस करता है कि अमला उसे मुक्त होने के लिए अपनी तरफ से अवसर दे रही है इस स्थिति में स्वाभाविक रूप से रंजना अपने पति की आन्तरिक भावनाओं से अपरिचित न रह पाती है, उसके सामने पति का सुख प्रधान है क्योंकि वह अमर को पूर्ण समर्पित भाव से प्रेम करती है, उसका प्रेम स्वयं के सुख तक सीमित नहीं है बल्कि उसके प्रेम का विस्तार अमर के सुखी जीवन से शुरू होकर उसी तक है अमर को

सुखी देखने के लिए रंजना उसको छोड़ कर चली जाती है । उपन्यास में महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है जबकि इसी दौरान अपने जीवन के अकेलेपन से ऊबी हुई अमला भी आत्महत्या कर लेती है, और उपन्यास के अन्त में अमर अकेली जिन्दगी जीने को विवश हो जाता है ।

(iii) मूल्यांकन - "एक इन्च मुस्कान" की पूरी कथावस्तु को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास में दोनों प्रमुख नारी पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर अधिक हुआ है, हालांकि इनके अलावा सकुन, मीरा मंदा भाभी आदि और भी नारी पात्रों का भी कुशलता पूर्वक चित्रण हुआ है । दोनो प्रमुख नारी पात्रों के चरित्र एक दूसरे की विरोधी मनोवृत्तियों को लेकर उपन्यास में विकसित होते हैं । विमल शर्मा के अनुसार "अमला का स्वरूप जहाँ रहस्य-मयी नारी का ताना-बाना बुनता है (वैसे उसके सारे रहस्य अंतत: खुलते जाते हैं) वहीं रंजना शीशे की तरह पारदर्शी व्यक्तित्व की नारी है जिसे उसकी सच्चाई के साथ आरम्भ से अन्त तक देखा जा सकता है ।" [1] अमला जहाँ परिस्थितियों की विषमता के चलते जीवन के हर एक मोड़ पर एक नया अनुभव उठाने की कोशिश में प्रतिक्रिया नारी बनती जाती है । वही रंजना अपने एक निष्ठप्रेम के चलते अमर की खुशी को अपना सर्वस्व मान कर चलती है अमला अपने दृष्टिकोण को इन शब्दों में अमर के सामने व्यक्त करती है "कोई भी पुरुष मेरे जीवन का पूरक हो यह मेरे अंह को सहन नहीं और समझ लो यह अहं अमला का पर्याय है । मैं विवाह करना नहीं चाहती, उस ऊँचाई को पाना चाहती हूँ जहाँ जाकर यह सब निरर्थक-सा लगने लगे ।" [2]

दरअसल यह मानसिकता आधुनिकता की विसंगतियों से उत्पन्न उस स्वच्छन्दता की प्रतीक है जिसका परिणाम विघटन के सिवाय और कुछ नहीं

---

1. डॉ० विमला शर्मा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास में नारी के विविध रूप, सन्-1982, पृ०-284.
2. राजेन्द्र यादव - मन्नू भण्डारी, एक इन्च मुस्कान, पृ०- 183, सन्- 1961.

है । डॉ० रामविनोद सिंह के शब्दों में "वह चाहती है कोई उसे अहर्निश प्यार देता रहे पर वह भी उसके अनुकूल बनकर । उसको भोग भी करे; उसका अधीनस्थ बनकर ।" [1] इस तरह किसी स्पष्ट आन्तरिक व्यवस्था के अभाव में उसका व्यक्तित्व बीच-बीच में सुदृढ़ होते हुऐ भी अन्त तक बिखरता चला जाता है, जबकि रंजना के जीवन में एक निष्ठता के चलते एक व्यवस्थित क्रम है - अपने प्रिय के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा से एकान्तिक समर्पण । फलतः पति का पूर्ण प्यार पाना, अपना अधिकार मानना उसके स्वभावगत विशेषता है । अपने मन की सम्पूर्ण गहराई के चलते पति की सम्पूर्ण निष्ठा की वह अपेक्षा करती है यह महसूस करने पर कि उसे पति की यह निष्ठा न मिल पायेगी वह बहादुर नारी की तरह अपना रास्ता खुद बनाने के लिये नये जीवन की ओर बढ़ जाती है ।

अमर का चरित्र इन दो विपरीत मानसिकता वाली नारियों के बीच में धुरी का काम करता है अन्त तक वह किसी ठोस निर्णय की स्थिति में नहीं आ पाता है । उधेड़बुन में पड़ा अमर जीवन के आरंभिक दौर में जहाँ रंजना से अभिभूत है वहीं स्वच्छता की पर्याय अमला के सम्पर्क में आकर उलटी सलाह को भावी जीवन की विचारधारा बना लेता है । न तो अमला से जुड़ पाता है और न ही रंजना को छोड़ पाता है । संक्रमण की यह स्थिति एक विस्फोट - सामाजिक एवं पारिवारिक विस्फोट को जन्म देती है । इसके फल-स्वरूप अमला की मौत रंजना का गृह त्याग और अमर का एकाकीपन अन्त में सामने आता है ।

---

1. डॉ० रामविनोद सिंह, हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी चित्रण, पृ० - 241.

(ङ) आपका बंटी

चूँकि "एक इन्च मुस्कान" राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के सम्मिलित प्रयासों का परिणाम है इसलिये इसे सही अर्थों में इनका पहला उपन्यास नही माना जा सकता है, वास्तविक अर्थों में "आप का बंटी" ही मन्नूजी का पहला और मौलिक उपन्यास है जिसमें बाल मनोविज्ञान की बारीक पकड़ के आधारपरसमूची कथा को आकार दिया गया है। डॉ० मनमोहन सहगल की राय में "यद्यपि लेखिका का अब तक प्रकाशित यह एक मात्र मौलिक उपन्यास है। तथापि कथानक - प्रस्तुतीकरण रचना - तंत्र समस्या और उसकी यथार्थपरक अनुभूतियों के आग्रह में लेखिका की ईमानदारी इसे उपन्यास जगत का एक महत्वपूर्ण पदचिन्ह बनाने में समर्थ हुई है।[1]

(i) कथावस्तु - सोलह भागों में विभक्त और 227 पृ॰ में वर्णित मन्नू भण्डारी का उपन्यास "आपका बंटी" वर्तमान दौर का एक सशक्त उपन्यास है। समूचे उपन्यास में पारिवारिक विसंगति के शिकार दम्पत्ति के इकलौते पुत्र बंटी को बीच में रखकर उसकी मानसिकता की मनोवैज्ञानिक और यथार्थपरख खोज की गई है। सकुन और अजय की एक मात्र सन्तान बंटी की मानसिक यातनाओं का दौर मम्मी-पापा के तलाक के साथ शुरु होता है। सकुन एक कॉलेज की प्रिंसिपल है उसका वह रूप बेहद सख्त है बंटी की मम्मी के रूप में वह अत्यन्त कोमल है। अपने मित्र टीटू से उसे आभास होता है कि उसके मम्मी-पापा का तलाक हो गया है एक दिन मम्मी के साथ कॉलिज जाने पर वह अपनी मम्मी के व्यक्तित्व का कठोर पक्ष देखता है। आधुनिकता के इस दौर में व्यक्तित्व का विभाजन यहीं स्पष्ट हो जाता है। टीटू से संकेत पाकर तलाक या दोस्ती क्या होती है इसे समझना उसकी प्रधान समस्या बन जाती है और यही समस्या

1॰ डॉ० मनमोहन सहगल - हिन्दी उपन्यास के पद चिन्ह, 1985

DISS
0,152,3,N316,1:g(H) H-2030
T52M6

उसके व्यक्तित्व के बिखराव का कारण भी । सामाजिक सन्दर्भों से कटा और केवल मम्मी से जुड़ा किन्तु पापा के अलगाव से गुजरता बंटी अवचेतन की स्थिती में आन्तरिक जीवन की अनिवार्य यंत्रणा का आदी होता जाता है ।

बंटी अक्सर अपनी मम्मी को उदास और गहरे सोच में डुबा हुआ देखता है इसी दौरान एक दिन उसके वकील चाचा आते हैं और अकेले में मम्मी से कुछ बातें करते हैं जिसे बंटी सुन और समझ नहीं पाता है । बात यह है कि अजय का सम्बन्ध एक नई औरत से हो चुका है जिससे अजय की सन्तान भी होने वाली है । ऐसे में सकुन से कानूनी तलाक जरूरी है और इसी जरुरत को पूरा करने के लिये उसके वकील चाचा आऐ हुऐ हैं ।

अभी तक सकुन का यह मानना था कि बंटी की वजह से अजय और उसके सम्बन्ध पुन: हो जायेंगे । इसके पीछे कारण यह रहता है कि अलग रहने के बावजूद अजय बंटी से मिलता रहता है और उसे खिलौने भेजता रहता है । वकील चाचा के तलाक का कानूनी प्रस्ताव उसका सारी आशाओं को समाप्त कर देता है । वह उन दिनों को याद करती है जबकि उनके बीच तनाव की स्थिति थी तथा वे एड्जेस्ट करने की कोशिश भी करते थे । ऐसा न हो सका जबकि शकुन प्रिंसिपल हो गई, और अजय से अलगाव हो गया । वह महसूस करती है कि अजय को गिराने व तोड़ने की कोशिश में वह खुद ही टूट गई । वकील चाचा उसे दो सुझाव देते हैं एक तो बंटी को होस्टल में भेजने का दूसरा उसे खुद अजय की तरह एक नई जिन्दगी शुरु करने का । ऐसे में उसे डॉ० जोशी की याद आती है, अपनी नई जिन्दगी के लिये । इसके पीछे प्रतिक्रिया की भावना है । मीरा उसे अजय का वह हथियार लगती है जिससे उस पर आक्रमण किया जा रहा है, बदले में डॉ० जोशी उसे उस हथियार के रूप में दिखाई पड़ते हैं जिससे वह अपने लिये इस्तेमाल कर सकती है ।

इसी दौरान बंटी के पापा आते हैं और बंटी को पापा के प्रति-अरमान और मिलने की उत्सुकता जागृत होती है । वह पापा से मिल कर उनसे

अपने साथ रहने का आग्रह करता है । रात को वह अपने पापा के साथ वापस लौटता है लेकिन मम्मी-पापा में बहुत सीधी-सादी बातचीत होती है पापा वापस चले जाते हैं और बंटी के मम्मी-पापा के एक साथ रहने के सपने ज्यों के त्यों रह जाते हैं । दूसरे दिन मम्मी कोर्ट जाती है बंटी अकेला घर में रह जाता है अपनी फूफी से मालूम होता है कि पापा-मम्मी से हमेशा के लिये अलग हो गये हैं । क्रोध में वह काफी तोड़-फोड़ करता है, कोर्ट से वापस लौटने पर मम्मी की गहरी वेदना स्पष्ट है । सुबह के सिलसिले में बंटी के सवाल पर मम्मी का उत्तर है - "अब होने को कुछ भी बाकी नहीं रह गया है, अब से बंटी उसका ही बेटा है केवल उसका । और फफक कर रो पड़ती है ।

मम्मी की यह गहरी वेदना बंटी को उसके बड़प्पन का अहसास करवाती है । उसे विश्वास हो जाता है कि मम्मी और पापा का अलगाव अब पक्का हो गया है । वह सान्त्वना देने के लिये पापा की फोटो मेज पर से उठा कर आलमारी में बन्द कर देता है और मम्मी उसे प्यार से उसे अपने सीने से चिपका लेती है । इतना ही नहीं अक्सर वह मम्मी को समझाने के लिऐ कहा करता है कि वह पापा के साथ नहीं रहना चाहता । इसी बीच बंटी के मन में एक नये तरह की उलझन पैदा होती है जिसका सम्बन्ध डॉ० जोशी और मम्मी के बढ़ते जाते सम्बन्धों से है । अपनी मम्मी पर किसी और का अधिकार वह सहन नहीं कर पाता है । मनोविज्ञान की भाषा में ऐसा इनफिरियारटी कॉम्प्लेक्स के कारण होता है । दूसरे पापा के अभाव में मम्मी ही उसके लिये सब कुछ है । मम्मी किसी और की हो जाय बंटी को यह सह्य नहीं है । इस तरह मनोवैज्ञानिक आधार के साथ ही साथ इस विद्रोह का सम्बन्ध उस परिवेश से भी है जिसमें बंटी जी रहा है ।

स्कूल खुलने के बाद बंटी राहत महसूस करता है लेकिन घर लौटने पर वह मम्मी को अपनी किताब व कापियों पर कवर चढ़ाने को कहता है । मम्मी डॉ० जोशी के साथ लॉन में बैठी रहती हैं । खेल कर वापस आने पर वह

मम्मी पर नाराज होता है और डॉ० जोशी की उपेक्षा करता है । बंटी को मम्मी डॉ० जोशी के निकट लाना चाहती है इसलिये रात को वह किताब कापियों पर कवर चढ़ा देती है । सुबह बंटी को घूमने चलने के लिये कहती है । ठीक समय पर डॉ० जोशी की गाड़ी आती है और बंटी न चाहते हुऐ भी गाड़ी पर घूमने का लोभ नहीं छोड़ पाता है घूमने के दौरान वह अपने को उपेक्षित महसूस करता है और एक बार फिर अपना अलगाव मम्मी से महसूस करता है इस तरह मम्मी की नई जिन्दगी की तलाश बंटी को उससे दूर करती जाती है । मम्मी की इस नयी जिन्दगी से बंटी अपना रिश्ता कायम तो नहीं ही कर पाता है और भी अलग होता जाता है ।

आये दिन बंटी नयी-नयी समस्याओं से जूझता है । यहाँ तक की छुट्टियों के दिन भी वह अपने आप को अलग से व्यस्त रखना चाहता है । वह मम्मी की हर क्रियाओं को बहुत गहराई से महसूस करता है । वह पापा को पत्र भी लिखना चाहता है क्योंकि उसे ऐसे में पापा की बहुत याद आती है । मम्मी जब भी सिंगार करती रहती है वह समझ जाता है कि डॉ० जोशी आने वाले हैं, मम्मी अब उसे मारने भी लगी है । वह महसूस करता है कि उसके भूखे रहने की किसी को परवाह नहीं है । मम्मी महसूस करती है कि बंटी की वजह से उसे दूसरों के सामने अपमानित होना पड़ता है । मम्मी के प्रति गहरी भावना रहते हुऐ भी वह अपनी मनोग्रंथियों से मुक्त नहीं हो पाता । उसके व्यक्तित्व के आन्तरिक और बाह्य पक्ष के फासले और भी गहरे होते जाते हैं ।

शकुन व डॉ० जोशी की शादी तय हो चुकी होती है । शकुन यह मान लेती है कि बंटी उसके व अजय के सम्बन्धों के बीच माध्यम का काम न कर सका तो डॉ० जोशी से होने वाले सम्बन्धों में भी वह बंटी को आड़े न आने देगी । वह यह भी महसूस करती है कि बंटी ने अपने पिता को ही "इनहेरिट" किया है । यहाँ शकुन का व्यक्तित्व भी यौवन के आवेग और वात्सल्य के बीच बंटा हुआ दिखता है । पिछले तिक्त अनुभव की वजह से ही वह बंटी को बीच में नहीं लाती है ।

शकुन की डॉ० जोशी से शादी हो जाती है । विवाह का समूचा आयोजन बंटी को भीतर ही भीतर सालता रहता है घर में रहने वाली फूफी भी अब उस घर में नहीं रहना चाहती । फूफी का मानना है कि अजय के जिस काम से घर की बेइज्जती हुई वही काम शकुन भी कर बैठी । वह यही कह कर मानती है कि वह हरिद्वार चली जाये ऐसे में बंटी का एकदम अकेला रह जाना स्वभाविक है वह न ही खुश हो पाता है न पूरा दु:खी । उसके बिखरने और टूटने का सिलसिला जारी रहता है ।

शकुन डॉ० जोशी के घर जाती है जहाँ उसका विशेष स्वागत होता है । बंटी यहाँ पर भी अपने को अकेला महसूस करता है । मम्मी का डॉ० - जोशी से आलिंगन बद्ध हो जाना उसे काफी नागवार लगता है । यही नहीं मम्मी का मिसेज जोशी कहना भी उसे कुरेदता है । डॉ० जोशी के बेटी जोत का आंटी की जगह शकुन को मम्मी कहने लगना भी उसे खटकता है । रात को डॉ० जोशी व मम्मी को वह नग्न रूप में ही देखता है क्योंकि मम्मी ने उसे अपने पास सुला लिया था । आतंकित बंटी चीखना चाह कर भी चीख नहीं पाता है । उसके मन में एक अजीब-सा विराग पैदा हो जाता है ।

सुबह नाश्ते की टेबुल पर भी उसके दिमाग में रात वाले दृश्य घूमते हैं । अब वह विराग की जगह उत्तेजना महसूस करता है । जोत को भी वह मम्मी के रूप में देखता है तथा उसके फ्राक में झांकने की कोशिश करता है हालांकि ऐसा करने से उसे पाप-बोध भी होता है । हर रात को उसे वही दृश्य याद आते हैं इस तरह वह दु:स्वप्न से हर रात गुजरता है जिससे उसकी मम्मी खुलने नहीं देती है वह मम्मी के थप्पड़े भी खाने लगता है जबकि मम्मी अभी व जोत को नहीं डाँटती । एक बार फिर दु:खी होकर वह पापा को चिट्ठी लिखना चाहता है । उसे डॉ० जोशी के परिवार नियोजन सम्बन्धी शब्द बार-बार याद आते हैं और वह अपने आप को तीसरा व फालतू बच्चा समझने लगता है । एक नये परिवार व परिवेश में अपने आपको अलग-थलग महसूस करता बंटी मानसिक

यंत्रणा के दौर से गुजरता जाता है । उसकी जिन्दगी की सबसे कड़वी सच्चाई अपने असली मम्मी-पापा के प्यार का न मिलना है ।

उसके अवचेतन में बहुत कुछ घूमता रहता है । डॉ० जोशी उसे सन्तुष्ट करने की भरपूर कोशिश करते हैं और इसी सिलसिले में उसे एक दिन बाहर घुमाने की योजना भी बनाते हैं । बंटी खुश भी होता है लेकिन अचानक उसी दिन एक मित्र का "हार्ट अटेक" होने के कारण वे नहीं आ पाते हैं और बंटी तोड़-फोड़ शुरु कर देता है । मम्मी का गुस्सा एक थप्पड़ में उतरता है और वह बंटी को अपनी जिन्दगी में जहर घोलने वाला समझती है वह यह भी कहती हैं कि अगर उसके पापा उसे लिवा ले जाना चाहे तो वह भेजने को तैयार है ।

बंटी के पापा आते हैं घर न आकर "सरकिट हाउस" पर ही रुकते हैं । शाम को डॉ० जोशी की अनुपस्थिति में वे घर आते हैं । मम्मी का नमस्कार बड़ा ही औपचारिक होता है । पापा के पूछने पर बंटी उनके साथ चलने को कहता है वह रहने को बिलकुल तैयार नहीं । हालांकि मम्मी की भीतरी हलचल को जानता है फिर भी मम्मी शांत ही बनी रहती है यह जान कर ही । कि मम्मी उसे रोक नहीं रही हैं वह फिर से कहता है मैं तुम्हारी कोई चीज नहीं ले जाऊँगा । जाते समय वह पूछती है "बंटी वहाँ जाकर मुझे बिलकुल भूल तो नहीं जायेगा, चिट्ठी लिखेगा मुझे," पर बंटी वहाँ भी साफ-साफ इन्कार कर देता है ऐसा वह अपने विद्रोह को व्यक्त करने के लिये करता है । डॉ० जोशी मम्मी और जोत उसे प्लेटफार्म तक छोड़ने जाते हैं और बंटी चला जाता है । अलगाव का यह दुखान्त केवल मम्मी से ही नहीं जुड़ा है बल्कि इसका सम्बन्ध उससे कहीं ज्यादा बंटी का है ।

बंटी के चले जाने के बाद शकुन विचारों के घेरे में गहरे तक उतरती चली जाती है । आत्म मंथन के एक लम्बे दौर से वह गुजरती है । बहुत चाहते हुऐ भी वह न तो अजय को ही दिल दे सकी और न बंटी को । जब भी वह चाहती है, वह गलत हो जाती है ।

बंटी अजय से ही नहीं बल्कि डॉ० जोशी के सम्बन्धों का भी सेतु था । बंटी के चले जाने के बाद सूनापन शकुन को सालता है । बंटी के उपयोग की चीजें देखकर वह रोने लगती है । डॉ० जोशी उसे सीने से लगाकर सान्त्वना देना चाहते हैं किन्तु मातृत्व की असीमित व्यथा पति के क्षणिक प्यार से तुष्ट नहीं हो पाती है दो पुरूषों के बीच में विभाजित शकुन का मन बंटी पर ही तो केन्द्रित होता है ।

लौटते हुए बंटी की रेल की यात्रा उसके जीवन की यात्रा की तरह ही बीतती है । ट्रेन के शोर में बंटी के भीतरी और बाहरी व्यक्तित्वों की टकराहट भी गूँजती रहती है । कभी जोर से मम्मी की याद आती है कभी प्यार करते हुये पापा की । नये घर में कभी उसे लगता है पापा ही मम्मी बन गये हैं कभी लगता है पापा-पापा भी न रहे । वही समस्या उसके साथ एकबार फिर आ गई जिनसे और झुंझलाकर वह यहाँ आया है । वहाँ किसी नऐ आदमी को पापा कहलवाया जाता था, यहाँ किसी नयी औरत को मम्मी । बाहरी रूप से सुख-सुविधा के सारे सामान मौजूद रहते हुये भी बंटी मानसिक धरातल पर बिलकुल आंतरिक व विभाजित रहता है । पापा बंटी को होस्टल में रखने का निर्णय लेते हैं । उसके लिये ढेरों सामान खरीदे जा रहे हैं मगर बंटी खामोश बिलकुल खामोश है । निर्णय का नतीजा यह होता है बंटी का अवचेतन एक बार फिर से विचारों के घेरे में सिमट जाता है । दूर-दूर तक उसका मन दौड़ता है मगर कहीं एक जगह स्थिर नहीं हो पाता है पहले मम्मी से वह कटा ही था पापा से भी अब कट गया और एक बार फिर से कथानक के उतार-चढ़ाव के बीच में विकसित होते "आपका बंटी" उपन्यास के अन्त में बंटी की जीवन यात्रा एक करुण त्रासदी में बदल जाती है ।

§iii§ मूल्यांकन -"आपका बंटी" उपन्यास आधुनिकता के चालू फैशन की विसंगतियों का चित्रण करने वाला एक मजबूत दस्तावेज है । इसकी बुनियादी समस्या"

"आधुनिकता-बोध में जी रहे पति-पत्नी के "एडजेस्टमेंट" की समस्या है।" [1] सामंजस्य न होने का प्रधान कारण आधुनिकता के संदर्भों में ढूंढा जा सकता है "इस समस्या का कारण खोजने के लिये आधुनिकता और समकालीन परिवेश के बीच सतत् विरोध की स्थिति उत्तरदायी है।" [2] आधुनिक युग में हमारे समाज में तमाम तरह के परिवर्तन हुए। इस परिवर्तनों में नारी-स्वातंत्र्य की चेतना का भी अहम् स्थान है। परंपरागत में नारी का अपने अधिकारों और स्वतंत्रता की बात करना एकाएक समायोजन में बाधा डाल रहा है। नतीजतन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी परिवारों में बिखराव आम समस्या का रूप लेता जा रहा है। पति और पत्नी दोनों ही अपनी स्वतंत्रताओं के जुनून में एक दूसरे की स्वतंत्रताओं को बाधित करते हैं। ऐसे में सम्बन्धों का निर्वाह मुश्किल हो जाता है। लेखिका ने अपना ध्यान इसी समस्या पर केन्द्रित किया है और इसकी गहराई तक जाने की कोशिश की है।

"ध्यान देने की बात है कि मन्नू भण्डारी ने उपन्यास का नाम मात्र "बंटी" न रखकर "आपका बंटी" रखकर बड़ी गहरी चोट की है।" [3] इसके पीछे दो प्रमुख कारण हैं। "एक तो उपन्यास में बंटी को केन्द्र में रखकर समूचे कथानक का गठन किया गया है, बंटी के ही कारण शकुन और अजय के पारिवारिक समस्याओं का भी उल्लेख हुआ है ... दूसरे यह बंटी उपन्यास का पात्र मात्र न होकर मध्यवर्गीय समूचे समाज के बंटी जैसे बालकों का प्रतिनिधि है। वह एक प्रतीक है आज की पारिवारिक विसंगतियों के बीच संवेदनहीन परिवेश का।" [4]

---

1. डॉ0 बंशीधर, डॉ0 राजेन्द्र मिश्र - मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, 1983 ; पृ.-45.
2. वही, ... पृ.-45.
3. डॉ0 ज्ञान अस्थाना - हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ, पृ.-87.
4. डॉ0 बंशीधर, डॉ0 राजेन्द्र मिश्र - मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, 1983 ; पृ. - 37.

यह जो बंटी का प्रतिनिधि चरित्र है वह कहीं न कहीं निश्चित रूप से आधुनिक मध्यवर्गी समाज की तमाम विसंगतियों को एक साथ छूता है। यह स्पर्श सिर्फ अजय व शकुन को कष्ट देने वाला नहीं है। बल्कि उन तमाम लोगों को छूता है जो आधुनिकता की इस त्रासदी को भुगत रहे हैं। अमानवीय होते जा रहे परिवेश और उसमें लगातार टूटते बिखरते सम्बन्धों की व्यथा-कथा का जिंदा दस्तावेज यह उपन्यास है। इस उपन्यास का नाम सिर्फ बंटी रखने पर बंटी एक व्यक्ति पात्र बनकर रह जाता, किन्तु बंटी सिर्फ एक बंटी नहीं है बल्कि वह इस बिगलित मानसिकता में जी रहे हमारा, आपका और सभी का बंटी है, लेखिका के आपका बंटी नामकरण की पृष्ठभूमि में यही आशय है और शायद एक पैना व्यंग्य भी। नन्दिनी मिश्र की राय में "यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिये की आपका बंटी उपन्यास के सोलह अध्यायों या परिच्छेदों में प्रत्येक में बंटी का उल्लेख अवश्य है और प्रारम्भ से अन्त तक बंटी ही पाठकों के नेत्रों के समक्ष विद्यमान रहा है। अतएव इस उपन्यास का शीर्षक आपका बंटी न केवल प्रसंग-गर्भित है बल्कि वह पात्रों के नाम वैशिष्ठ्य से आकर्षित और उपन्यास की प्रकृति को व्यंजित करने वाला ही है। "गोदान" में जिस तरह अधिकारी कथा ग्राम जीवन की है और प्रसांगिक नगरीय जीवन की उसी तरह आपका बंटी उपन्यास में भी अधिकारी कथा बंटी की है और प्रासांगिक रूप से मम्मी की कथा। बंटी के प्रसंग जहाँ खुद के लिए विकसित होते हैं वहीं मम्मी-पापा के प्रसंग बंटी के चलते विस्तार पाते हैं। समूचा ध्यान एक पात्र पर ही केन्द्रित होता है न की समूची कथावस्तु पर इसकी वजह उपन्यास में बाल मनोविज्ञान का प्रधान आधान होता है।

पात्र रचना के शिखर पर बंटी उपन्यास का प्रतिनिधि पात्र है जिसके इर्दगिर्द समूचा कथानक घूमता है। वही समूची घटनाओं का केन्द्र भी है। उपन्यास की पात्र रचना में किसी तरह का उलझन नहीं है क्योंकि परिस्थितियों के भिन्न-भिन्न होते हुऐ भी पात्रों के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता है। पात्रों के आधार पर देखा जाय तो उपन्यास में कोई विशेष आरोह-अवरोह

नहीं दिखाई देता है और न ही किसी तरह के आदर्शवाद का आरोपण। डॉ० बंसीधर ने उपन्यास के पात्रों को तीन श्रेणियों में बांटा है। "एक तो बंटी है जिस पर समूचा उपन्यास आधारित है दूसरे मम्मी है जिसके कारण बंटी की समस्या विकसित हुई है, इसी समूह में डॉ० जोशी व अजय भी आ जाते हैं अन्य पात्र उपन्यास की घटनाओं को प्रासंगिक संदर्भ देते हैं और वे व्यक्तित्वहीन हैं।"

इस तरह देखा जा सकता है बंटी के अलावा तीन महत्वपूर्ण पात्र शकुन, अजय, डॉ० जोशी हैं तथा उपन्यास के शेष पात्र महज कथानक के विकास को जारी रखने के लिये (ऐक्सट्रा) के रूप में ही है।

आधुनिकता की आंधी में बहते हुए अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्रता के नाम पर आज हिन्दुस्तानी समाज के परिवारों में इतना जहर फैल रहा है कि देश की भावी पीढ़ी बेसहारा होकर एक अजीब तरह के द्वन्द में टूटने और घुटने को छोड़ दी जा रही है। अपने सुख सुविधा या आत्मतोष की खोज तो पशु भी कर लेता है लेकिन मनुष्य का चरित्र मानवीय धरातल पर दूसरों को भी सुखी करने से जुड़ा होता है। विडम्बना यह है कि समाज का आधुनिक दौर मानवता के इस धरातल से तेजी से पलायन कर रहा है। मन्नू भण्डारी की दृष्टि का केन्द्र बिन्दु आत्म तुष्टि की यही मानसिकता है।

आपका बंटी उपन्यास के माध्यम से बच्चे को केन्द्र में रखकर दाम्पत्य सम्बन्धों की समस्या को हिन्दी में पहली बार उठाया गया है। आलोचकों में इस उपन्यास को लेकर विभिन्न मत रहे हैं, कुछ ने इसे "भावुकता और भावना" की विभाजक रेखा के रूप में देखा है तो कुछ ने लेखिका के खुद के अनुभवों का आरोपण किया। लेकिन डॉ० ज्ञान के शब्दों में "इसका मूल सम्बन्ध तो यह है कि तलाक शुदा भारतीय पति-पत्नी के बच्चे के लिए कहने को तो दो घर है परन्तु सत्य तो यह है कि घर जैसी ऊष्मा भरी आत्मीयता जो अविकसित बच्चों को खिलने और खेलने के लिए आवश्यक है - नहीं मिलती।

बंटी के जैसे बच्चों की संख्या यदि बढ़ती गई तो शीघ्र ही भारत में भी फ्रस्ट्रेशन से जनित कुन्ठित हो आत्महत्या करने वालों की संख्या बढ़ेगी । हिप्पी और बिटनिक पीढ़ी पनपेगी ।" 1

बंटी की समस्या एक विशेष वर्ग की समस्या है यह वर्ग मध्य वर्ग है तथा बौद्धिकता का नकली अहम इन्हें तनाव पूर्ण जिन्दगी जीने के लिये विवश करता है । यह तथाकथित बुद्धि जीवी और साथ ही साथ सजग सम्पत्ति भी जो अपने असफल वैवाहिक जीवन का समाधान विवाह विच्छेद में ढूंढते हैं - वे अपनी खुद की अहम जन्य कुंठाओं को दुनिया का सबसे बड़ा दु:ख मान कर अपने मासूम बच्चों की कोमल भावनाओं और अनिश्चित भविष्य के प्रति विचार करने के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं समझते हैं । पूरे उपन्यास में त्रासदी के माहौल की वजह अजय और शकुन यानी मां और बाप है किन्तु विडम्बना यह है कि यातना का समूचा सागर अकेले बंटी को पीना पड़ता है । मां के पास रहता हुआ बंटी पिता के अभाव को बराबर महसूस करता है । अपनी ममता का समूचा सागर उडेल देने के बाद भी शकुन बंटी के पिता के अभाव को नहीं दूर कर पाती है ।

पूरे उपन्यास में शकुन के अहम् और उस अहम् से उत्पन्न तमाम ऐसी परिस्थितियों का चित्रण लेखिका द्वारा किया गया है जो बंटी की करुण त्रासदी के लिए लगातार जिम्मेदार है यही वजह है कि कहीं पर भी सीधे-सीधे लेखिका ने बंटी के संत्रास और मानसिक उहापोह का चित्रण नहीं किया है । पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों का तनाव लगातार गहराता जाता है । दोनों के भीतर ही भीतर चलने वाली यह एक अजीब लड़ाई थी जिसमें दम साधकर दोनों ने हर दिन प्रतिज्ञा की थी "कि कब सामने वाले की सांस उखड़ती है और वह घुटने टेक देता है ।" 2

---

1. डॉ० ज्ञान अस्थाना, हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ,
2. डॉ० ज्ञान अस्थाना, हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ,

फिर भी शकुन के मन में बंटी को लेकर ही सही आशा की एक किरण बनी रहती है - कौन जाने बंटी को लेकर सम्बन्ध अच्छे हो जाय, लेकिन यह सपना जल्दी टूट जाता है और तलाक की नियति से एक क्रूर असन्तोष बदले में मिलता है। दर-असल शकुन एक ऐसी नारी है जिसमें अपने स्वयं के प्रति प्राथमिकता है - पत्नी और मां का स्थान बाद में है। शायद यही वह कारण है कि वह अपने ही विचारे हुये कार्यों द्वारा आत्म प्रवंचना से ग्रसित रहती है। इस दम्पत्ति को अपने अहम और कुंठाओं के अतिरिक्त यह सोचने की कभी फुरसत ही नहीं मिली की आखिर बंटी की भी कोई यंत्रणा हो सकती है। अपना सारा दोष शकुन अजय पर मढ़ देना चाहती है। शायद यही उसका सबसे कमजोर पहलू है। वह अजय के साथ सुखी न थी और अगर डॉ० जोशी के साथ सुखी हुई भी तो बंटी के चले जाने पर वह खुशी कितनी असरदार रही, नहीं कहा जा सकता।

तलाक होने के बाद भी बंटी की इस बात में आस्था है कि उसके पापा उसके साथ रहने लगेंगे। लेकिन इसके बावजूद मां के आंसू देखकर पिता की तस्वीर वह आलमारी में बन्द कर देता है मानों यह सिद्ध करना चाहता हो कि मां के पक्ष में और पिता के विरुद्ध उसने बहुत बड़ा कदम उठाया हो। यही बंटी डॉ० जोशी के साथ घूमने की योजना पर बेहद नाराज हो जाता है। गोकि अपनी मां के साथ घूमने की कल्पना से उसे बेहद खुशी हुआ करती है।

शकुन अपने आपके साथ एक छलावा और करती है ••• डॉ० जोशी से विवाह करके। हालांकि इसके मूल में बंटी के लिये पिता के अभाव की पूर्ति एक बहुत बड़ा कारण है। विवाह के पश्चात् बंटी शकुन और डॉ० जोशी के बीच एक बहुत बड़ी बाधा सिद्ध होता है। एक बार फिर शकुन की भूल ही सिद्ध होती है लेकिन इस बार शकुन निर्णय लेती है कि बंटी अजय और उसके बीच अगर सेतु न बन सका तो वह उसे अपने और डॉ० जोशी के बीच बाधा भी नहीं बनने देगी। बंटी अजय के पास चला जाता है और नतीजा यह होता है कि बंटी की

विडम्बनाओं का एक नया सिलसिला शुरु होता है । वहां पापा का अभाव सालता था यहाँ पापा हैं तो मम्मी नहीं एक ही रास्ता शेष है ••• होस्टल । यह उपन्यास आधुनिकता के दौर में मतवाले बुद्धिजीवियों के थोथे अहम्वाद की असलियत को नंगा करता है और साथ ही साथ आगाह भी करता है कि इस थोथे अहम् की परिणीति वैवाहिक जीवन का खण्डन तो है ही - एक मासूम बच्चे के भविष्य से खिलवाड़ भी ।

एक आलोचक की राय में इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि अजय शकुन और बंटी के संदर्भों और सम्बन्धों को लेकर लेखिका ने तलाक चाहने वाले दाम्पत्तियों के सामने बंटी की दयनीय और कारुणिक स्थिति इतने स्वाभाविक और सहज ढंग से रखी है कि उन्हे पुन: अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए तलाक लेकर एक नादान बच्चे का जीवन बरबाद करने के लिए सोचना पड़ेगा ।[1]

इस उपन्यास में नारी के तमाम रूप भी बड़ी ही बारीक मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित किये गये हैं । गृहिणी के रूप में नारी और पुरुष से कंधे से कंधा मिला कर चलने वाली नारी यह दो विरोधी स्वरूप हैं आधुनिक युग की नारी के सम्भवत: यही विरोधी मनोवृत्ति नारी में एक तरह का रीतापन पैदा करती है जिसका समाधान झूठे अहम के चलते संभव नहीं हो पाता । शकुन के साथ भी यही होता है । सामने वालों को परास्त करने के लिए जैसा साहस और सन्नद्ध जीवन उसे जीना पड़ा उसने उसे खुद ही पराजित कर दिया । सामने वाला व्यक्ति तो पता नहीं कब का परिदृश्य से हट भी गया और वह आज तक उसी मुद्रा में उसी स्थिति में खड़ी है ••• सांस रोके दम साधे घुटी-घुटी और कृतियां ।[2]

आधुनिक संदर्भों के बनावटीपन ने समाज के मूल्यों के मानदण्डों को कितनी क्षति पहुंचाई है इसे किसी पैमाने से नहीं मापा जा सकता । पुराने

1• डॉ0 ज्ञान अस्थाना - हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ
2• मन्नू भण्डारी - आपका बंटी, पृ• - 38.

मूल्यों का टूटना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी है स्वस्थ मूल्यों का पनपना भी । केवल नये मूल्यों के नाम पर अधोमुखी प्रगति को प्रगति मान लेने से बड़ा कोई दूसरा सामाजिक छलावा नहीं है । भारतीय समाज की यह डिम्बना ही कही जायेगी कि आधुनिकता की इस सुरसामुखी बढ़त ने पुराने मूल्यों के समापन के नाम पर कुछ ऐसे मूल्यों का भी विनाश कर दिया है जो हमारी सांस्कृतिक गरिमा के सनातन तत्व थे और उनकी जगह पर तमाम ऐसे नकली और क्षण भंगुर मूल्यों को अपनालिया है जिनका सीधा असर हमारे वर्तमान सामाजिक ढाचें पर पड़ा है । इसकी एक दु:खद परिणीति नारी के आधुनिकता परस्ती के उस रूप में भी देखी जा सकती है जिसमें स्वावलम्बन और स्वाभिमान की जगह नकलीपन और थोथा अहम्वाद उत्पन्न हुआ । नतीजा यह रहा है कि नारी के वेदना और शोषण पहले की अपेक्षा बहुत कुछ कम नहीं हुआ है । कुछ मिला कर बात यह है कि लाश वही है सिर्फ कफन बदला है । डॉ० विमल शर्मा के अनुसार "इस प्रकार उपन्यास के अन्तर्गत एक ओर तो नारी की वेदना को मार्मिकता से रूपायित किया गया है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन के संदर्भों की कृत्रिमता और खोखलेपन को उपन्यास में अतिसूक्ष्मता से उजागर किया गया है ।"[1]

अन्त में अपनी भाषा शैली अपने पात्रों की तनावपूर्ण स्थितियों - व्यवहार और संरचनागतपहलू की दृष्टि से समूचा उपन्यास पर्याप्त रूप से सुगठित है फिर भी इसे हिन्दी उपन्यास साहित्य में मील का पत्थर मानना पूर्णत्या उचित नहीं है ।[2]

---

1. विमल शर्मा - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ०-281.
2. डॉ० ज्ञान अस्थाना - हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ

महाभोज : संक्षिप्त परिचय

महाभोज मन्नू भण्डारी के उपन्यास साहित्य की अब तक की श्रेष्ठतम् रचना है । यह उपन्यास एक तरफ जहाँ मन्नू भण्डारी की उपन्यास यात्रा में एक महत्वपूर्ण मोड़ लाता है वहीं दूसरी ओर हिन्दी के औपन्यासिक ढाँचे को एक नया तेवर भी देता है । इस उपन्यास में एक ही साथ आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों का बारीक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है । इसमें आज के राजनीतिक जीवन में आयी हुई मूल्यहीनता, तिकड़मबाजी, शैतानियत और सडांध का चित्रण किया गया है ।

आजादी के पहले का भारत जहाँ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चतुर्मुखी शोषण से आक्रांत व पीड़ित था वहीं अपनी आन्तरिक विसंगतियों से भी दिनों दिन खोखला हुआ जा रहा था । यह खोखलापन सदियों से चली आ रही सड़ी-गली मान्यताओं अंधविश्वासों और भोलेपन की कोख से उपजा खोखलापन था । विडम्बना यह रही की हिन्दुस्तानी जनता ने अपने मुक्ति संग्राम में अपना अधिकतम ध्यान ब्रिटिश हुकूमत को बाहर निकालने पर केन्द्रित किया न कि अपनी आंतरिक विसंगतियों पर । साहित्य में भी काफी कुछ यह प्रवृत्ति रही । जोकि इसके अपवाद भी देखे जा सकते हैं । प्रेमचन्द ने वर्तमान के साथ ही साथ आने वाले कल के खतरों को भी बहुत करीब से देखा था और अपनी इसी बारीक पकड़ के आधार पर अपने साहित्य के माध्यम से जनता को आगाह किया था ।

आजादी के बाद के भारत ने हमारे अपने समान के अन्तर्विरोध काफी तेजी से उभर कर सामने आये, अन्धानुकरण की भीड़ मानसिकता ने समाज को इतना कुछ पंगु कर डाला था कि लोगों ने अपने सोचने समझने की ताकत ही खो दी थी । जनता को छलने का क्रम आजादी के बाद भी जारी रहा । फर्क सिर्फ इतना था कि पहले यह छलावा विदेशियों की देन था और आजादी

के बाद अपने ही लोगों से मिला हुआ उपहार । स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान जाग चुकी जनता आजादी के बाद अपने हकों के लिये इक्का-दुक्का आवाज उठाने लगी । नतीजतन सरकारी दमन का चक्र कसता गया । सरकारी दमन और जनता की आवाज की टकराहट के फलस्वरूप कुछ भीषण कांड हुऐ जो हमारे प्रजातंत्र की असलियत पर प्रश्न चिन्ह लगाने को काफी थे । इन्हीं में से एक हादशा बेलछी का भी था जिससे आन्दोलित होकर मन्नू भण्डारी ने "महाभोज" की रचना की बेलछी कांड हिन्दुस्तान के व्यापक फलक पर एक छोटा-सा बिन्दु जरूर है मगर इतना गाढ़ा है कि इसे आसानी से मिटाना संभव नहीं है । यह भी सच्च है कि बेलछी-कांड इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सम्पन्न हुआ पहला व आखिरी कांड नहीं है बल्कि इसका सिलसिला अभी भी जारी है । हाल ही में हुआ बिहार का अक्षत कांड उसी परम्परा की एक कड़ी है ।

मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था की छत्रछाया में जी रहा प्रजातन्त्र और राजनीति किस स्थिति तक भ्रष्ट और दूषित हो गई है मन्नू भण्डारी ने "महाभोज" उपन्यास में इसी महत्वपूर्ण पक्ष का विश्लेषण किया है ।[1]

इसी शती के आठवें दशक में श्रीमती गांधी के शासनकाल के दौरान आपातकालीन स्थिति के नाम पर शासन का तानाशाही रवैया खुलकर सामने आया था । हिन्दुस्तानी जनता ने सन् 1977 में जयप्रकाश के सम्पूर्णक्रांति के आह्वान पर अपनी शक्ति और एकता का परिचय दिया था । फलत: कांग्रेस की पराजय हुई और जनतापार्टी शासन में आई । इसी शासन के दौरान का जो कालखण्ड है उसे मन्नू भण्डारी ने उपन्यास का आधार बनाया है ।

महाभोज में वर्णित कथानक से आज की राजनीति में फैले हुए पूँजीवाद, गुण्डागर्दी और धोखेबाजी का असली रूप सामने आता है उपन्यास

---

1. गोपालराय, शिविरा दस्तावेज - 1981, पृ॰-9.

में लेखिका ने उसे इतनी सफाई से पेश किया है कि कहीं भी अविश्वसनीयता का सवाल ही नहीं खड़ा होता है ।[1]

उपन्यास में दो शीर्षस्थ नेताओं "दा साहब, सुकुल जी" की राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता का एक तरह नंगा नाच है वही दूसरी ओर एस०पी०-सक्सेना का "हीरा और लोचन" इस क्रूर व्यवस्था में लगातार पिसता हुआ करुण चित्र है । यह सब कुछ ऐसा नहीं है जिसे महज लेखिका की कल्पना से उपजा हुआ मान लिया जाय बल्कि यह एक कड़वी सच्चाई है जो हर किसी की भोगी हुई सच्चाई है । की स्वयं मन्नू भण्डारी ने अपने एक साक्षात्कार में कहा है "मैं इन दिनों एक राजनीतिक उपन्यास "महाभोज" पूरा करने जा रही हूँ पिछले दिनों "बेलछीकांड" जैसी घटनाओं ने मुझे काफी उत्तेजित किया - मेरे मन का यही दर्द इस उपन्यास में गहरे और व्यापक रूप में छलका है ।"[2]

(घ) निष्कर्ष : इस तरह देखा जा सकता है कि मन्नू भण्डारी की अब तक की संक्षिप्त उपन्यास यात्रा में लगातार विकास हुआ है । व्यक्ति और परिवार के सीमित परिवेश से अलग इन्होंने समाज के व्यापक केनवास पर अपने औपन्यासिक चित्रों को उकेरने का प्रयास किया है । यह प्रयास उनके गहरे सामाजिक सरोकारों से निश्चित रूप से प्रभावित है और शायद यही वजह है कि इस पूरी यात्रा में कहीं ठहराव या अवरोध सामान्यतया नहीं दिखाई पड़ता । एक इन्च मुस्कान में जहाँ आधुनिकता के चालू फैशन में बरबाद होने वाले पात्रों का रेखांकन हुआ हैं वहीं "आपका बंटी" पूरे मौजूदा समाज के ऐसे बालकों की करुणगाथा बन जाता है जो बौद्धिक दम्पतियों के नकली अहम् बोध के शिकार हैं । इन सबसे कहीं आगे "महाभोज" अपनी व्यापकता और गहराई

---

1. गोपाल, समीक्षा - अक्तूबर-दिसम्बर, 1980, अंक-4, पृ०-32
2. डॉ० बंसीधर डॉ० राजेन्द्र मिश्र - मन्नू भण्डारी का सर्जनात्मक साहित्य, 21 मई 1979 .

में काफी सशक्त तरीके से आज के भ्रष्ट राजनैतिक परिदृश्यों का पर्दाफास करता है । मन्नू जी की इस उपन्यास यात्रा से गुजरने के बाद कहा जा सकता है कि - "मन्नू भण्डारी समकालीन कथा और नाट्य साहित्य में मानव जीवन की अन्तर्मुखी स्थितियों और परिवेगगत विक्षिप्तताओं को उभारने और अंकित करने में अग्रिम स्थान रखती हैं ।" ।

---

1. डॉ0 बंसीधर डॉ0 राजेन्द्र मिश्र - मन्नू भण्डारी का सर्जनात्मक स[illegible] 1983, भूमिका - पृ॰-5.

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

महाभोज उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(क) भारत में स्वातन्त्र्योत्तर राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक विकास और उसके अन्तर्विरोध

साहित्य और समाज के रिश्ते पर काफी पहले से बहस का एक लम्बा सिलसिला चलता रहा है। एक तरफ "साहित्य समाज का दर्पण है" - कहने वालों का एक वर्ग रहा है तो दूसरी तरफ साहित्य का अपना स्वायत्त शब्द संसार मानने वालों का भी स्वर उभरता रहा है। दोनों ही पक्षों के तर्क साहित्य जगत में गंभीर चर्चा का विषय बने रहे हैं। इनमें से पहला वर्ग कला को जीवन से जोड़कर "कला जीवन के लिए" का नारा बुलन्द करता रहा है तो दूसरा वर्ग "कला कला के लिये" कह कर कला के मनोरंजनवादी और विशुद्ध सौन्दर्य बोधी पक्ष की हिमायत में नारेबाजी करता रहा है। प्रस्तुत शोध के सम्बन्ध में भी इस सवाल का विशेष महत्व है। यह महत्व इसलिए है कि इस विवाद को समझे बिना साहित्य और समाज के रिश्तों पर कोई साफ नजरिया विकसित कर पाना संभव नहीं है।

कलावाद के हिमायतियों का विस्तार कला के रूप संरचना और सौन्दर्य बोधात्मक पहलुओं तक सीमित है और यह कला को समाज की समस्याओं से विरत रख कर अपने कला सृजन को ही इतिश्री मान लेते हैं। इनकी राय में कला को समाज के सन्दर्भों से जोड़ना कला के अपने मूल्यों माप-दण्डों की अवहेलना करना है। इसके ठीक विपरीत कला को जीवन से जोड़

कर देखने वाले कला को जीवन की समस्याओं से जोड़ कर उसी की अभि-व्यक्ति का एक मजबूत औजार मानते हैं, इनका मानना है कि समाज से काट कर साहित्य का लिखा जाना और पढ़ा जाना आनन्द की प्राप्ति का कारण तो हो सकता है, किन्तु मानव जीवन में किसी तरह का परि-वर्तन या विकास कराने में सहायक नहीं हो सकता । रचनात्मक संसार में इस विचारधारा को व्यवहारिक रूप देने का सर्वाधिक श्रेय अगर किसी को दिया जा सकता है, तो वह मुंशी प्रेमचन्द को जिन्होंने अपने समूचे रचना-संसार के माध्यम से कला के जीवनवादी सिद्धान्त की प्राण-प्रतिष्ठा तो की ही, आने वाली पीढ़ियों को इसी आधार पर लिखने का रास्ता भी सुझाया । प्रेमचन्द साहित्य को सोद्देश्य मानते थे । उद्देश्य रहित साहित्य उनकी दृष्टि में कोरे मनोरंजन का साधन मात्र ही हो सकता है । उन्होंने लिखा है "मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ ।"[1]

इन दोनों विचार-धाराओं की प्रमुख बातों को देखने के बाद किसी निष्कर्ष तक पहुंचने के लिये इनकी पड़ताल जरूरी है । यह भी जरूरी है कि इनके मूल्यांकन के लिये उन कसौटियों का इस्तेमाल किया जाय जो साहित्य की श्रेष्ठता का सही-सही ढंग से निर्धारण करती हैं । ये कसौटियां निश्चित रूप से साहित्य की वर्तमान जरूरत और उसकी सार्थकता से गहरे तक जुड़ी हुई हैं । वही साहित्य श्रेष्ठ कहा जा सकता है जिसमें मनुष्य के जीवन का हमारे समाज का और हमारी समस्याओं का वर्णन हो । वर्तमान दौर की भौतिकतावादी संस्कृति जिसमें मूल्यों का पतन और एक नये तरह की संस्कृति का परंपरागत संस्कृति से टकराव बहुत बारीकी से देखा जा सकता है, व्यक्ति के पास इस तरह का साहित्य पढ़ने का कम से कम अवकाश

---

1. मुंशी प्रेमचन्द - कुछ विचार, पृ.-

है, जिसमें कपोल कल्पित विवरण महज थोड़ी देर के लिये मौज प्रदान करे । अत: यह कहा जा सकता है कि कलावादी सिद्धान्त का आज के दौर में महत्व तो नहीं ही है, पतनशील संस्कृति के विकास में ही इसका योगदान हो सकता है । कला का जीवन से जुड़ कर होने वाला विकास ही समाज की नींद को तोड़ने में सहायक हो सकता है और यहीं पर "कला समाज के लिये" के सिद्धान्त की वर्तमान प्रासंगिकता बिलकुल साफ हो जाती है ।

प्रस्तुत शोध के सिलसिले में इस बात का महत्व असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया जा सकता है । खासकर तब जबकि हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग एक नई करवट ले चुका है और एक नये तरह के विकास पथ पर अग्रसर है । अपनी इस मंजिल तक पहुँचने में जहाँ इसे अपनी चारण प्रवृत्ति से संघर्ष करना पड़ा है, वहीं दूसरी ओर दरबारी संस्कृति की जकड़ से भी हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों का इतिहास इस बात का गवाह है कि आज का हिन्दुस्तान और आज की संस्कृति एक ऐसे दौर में पहुँच चुकी है जहाँ जनता का दिल बहलाने वाले साहित्य का समापन अनिवार्य हो उठा है यह जरूरत कब और क्यों महसूस की गई, इसे समझना बेहद जरूरी है ।

मेरा मूल विषय आजादी के बाद के भारत के विकास क्रम से जुड़ा हुआ जरूर है लेकिन इसका सिलसिला खास कर इसकी जड़ें आजादी के लगभग सौ साल पहले तक फैली हुई हैं । जनता की विद्रोही चेतना का पहला और सबसे तेज स्वर हिन्दुस्तान के इतिहास में उस समय गूँजा था जबकि हिन्दुस्तान गुलाम था और क्रूरता का तांडव नृत्य खुले आम जनता की नियति बनता जा रहा था । सैकड़ों वर्षों से शोषित और पीड़ित जनता बर्दास्त करने की हद को पार कर रही थी । नतीजतन 1857 में एक राष्ट्र-व्यापी विद्रोह जनता के विरोध के रूप में फूट पड़ा । इस विद्रोह के बारे में अँग्रेजों ने इसे "सिपाही विद्रोह" कहकर इसका अवमूल्यन करने की पूरी कोशिश की मगर इसमें कोई शक नहीं कि यह विद्रोह महज सिपाहियों का

विद्रोह न होकर उन तमाम किसान मजदूरों का विद्रोह भी था जिनके बेटे अंग्रेजों के हिन्दुस्तानी फौज में विवश होकर नौकरी कर रहे थे। इस विद्रोह की अपनी तमाम विशेषताएं थी जिन पर बहुत विस्तार से न कहकर इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसका मूल स्वर उस साम्राज्यवादी ब्रिटिश चेतना को नेस्तनाबूद करने का था जिसके अत्याचारों से हिन्दुस्तानी जनता का जीना दिनों दिन दूभर होता जा रहा था। इसका असर साहित्य पर भी पड़ना स्वाभाविक था। नवजागरण के प्रथम प्रवक्ता भारतेन्दु का उदय ठीक इसके बाद होता है और स्वाधीनता की चेतना साहित्य में भी प्रवेश करती है भारतेन्दु का साहित्य राष्ट्रीय चेतना और नव-जागरण का साहित्य है। जिसका अपना ऐतिहासिक महत्व है।

भारतेन्दु और उनके बाद, किन्तु स्वतन्त्रता के पूर्व का साहित्य स्वाधीनता की चेतना का साहित्य है। हालांकि इसी बीच का छायावादी साहित्य आरोपों के घेरे में है। इन आरोपों में छायावाद के पलायन वादी होने का आरोप प्रधान आरोप है, लेकिन नवीनतम शोधों के निष्कर्ष छायावाद में राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना और उसके सामाजिक सरोकारों की पुष्टि करते हैं। यह सही है कि छायावादी युग का साहित्य ऐतिहासिकता के सन्दर्भ से जुड़ा हुआ था लेकिन समसामयिक परिस्थितियों की अवहेलना करके नहीं। युगीन परिस्थितियों से मुंह मोड लेने की बात बहुत ठीक नहीं कही जा सकती है। चन्द उदाहरणों के माध्यम से छायावाद को "पलायनवादी" या "अतीत जीवी" घोषित कर देना तर्क संगत नहीं है। उस जमाने में जबकि ब्रिटिश हुकूमत का फौलादी शिकन्जा किसी भी क्षण किसी भी साहित्यकार की गरदन को बेरहमी से जकड़ सकता था, किसी भी आवाज को कुचल सकता था - यह संभव नहीं था कि साहित्यकार अपनी बात को

---

1. रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ॰-52.

सीधे-सीधे कह सकें । इतिहास के माध्यम से छायावादी कवि अपने समय की ही बात कह रहा था, इसके समझने की जरुरत है ।

आजादी के पहले की यह संक्षिप्त तस्वीर इस बात का संकेत देती है कि एक नये तरह की चेतना एक नये विचार लगातार साहित्य में तेजी से पनप रहे थे । उस समय की मुख्य समस्या स्वाधीनता की समस्या थी, लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि इस पूरे दौर के साहित्यकार अपने खुद के समाज की आन्तरिक विसंगतियों को भूले हुए थे । उनका ध्यान बराबर अपने समाज की उन कमजोरियों की ओर जाता रहा है जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, प्रभाव हमारे समाज को कमजोर करने के साथ ही साथ स्वाधीनता आन्दोलनों की जड़ों में भी घुन का काम कर रहा था । मुंशी-प्रेमचन्द, भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी और तमाम साहित्यकारों का रचना संसार इस बात की गवाही देता है ।

आजादी के बाद का भारत ब्रिटिश गुलामी से मुक्त था । इसकी प्रधान समस्या वह नहीं रही जो आजादी के पहले की थी । आजादी के पहले की प्रधान समस्या स्वाधीनता की समस्या थी जिसका प्रत्यक्ष तौर पर समाधान हो चुका था । इसके बाद वाले दौर में एक नये तरह का समाज अंगड़ाई लेने लगा जिसके साथ ही साथ नई-नई समस्यायें भी सर उठाने लगीं । मेरे मूल विषय का सम्बन्ध उसी समाज से है जो स्वातंत्र्योत्तर युग का समाज है तथा जिसकी समस्याओं से मन्नू भण्डारी के "महाभोज" का भी गहरा रिश्ता है ।

कमलेश्वर ने लिखा है कि स्वातंत्र्योत्तर शब्द और इसके अर्थ-बोधक स्थित आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के समीक्षा सन्दर्भ में एक पुष्ट विभाजक बिन्दु के रूप में व्याख्यायित है ।[1] निश्चित रूप से स्वातंत्र्योत्तर

---

1. कमलेश्वर - नई कहानी की भूमिका, पृ॰-71, 81.

शब्द हो आधुनिक काल की हिन्दी साहित्य की देहरी है जिसके इस पार साहित्य की समस्या का एक रूप है और उस पार दूसरा रूप । इस पार जहाँ आजादी की कसमकस है वहाँ उस पार हमारे अपने संविधान और अपने प्रजातंत्र की गोद में पलने और विकसित होने वाले हिन्दुस्तानी समाज की छटपटाहट । इस फर्क को समझने के लिये स्वातंत्र्योत्तर शब्द के अर्थ पर स्पष्ट होना होगा ।

डॉ० विवेकी राय ने स्वातंत्र्योत्तर शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुये लिखा है "भारतीय जीवन में इस शब्द का अर्थ है वह कालावधि जो 15 अगस्त, सन् 1947 ई० के पश्चात् अभिव्यक्त है और जिसमें आधुनिक मुक्त जीवन की समस्त संभावनाएं और देशगत बहुविध विकासशील वृत्तियों के प्रसार की कल्पनायें हैं ।[1] यानिकि 15 अगस्त, 1947 के बाद के भारत का समाज स्वातंत्र्योत्तर समाज है और इसी तरह इसके बाद का साहित्य स्वातंत्र्योत्तर साहित्य जिसमें "आधुनिक मुक्त जीवन की समस्त संभावनाएं शुरू-शुरू में मौजूद थी । इन संभावनाओं का विकास किस तरह से हुआ यह समझने के लिये और खास कर साहित्य की सार्थकता को समझने के लिये इस पूरे विकास क्रम को उसके राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक केन्द्र बिन्दुओं सहित देखना होगा ।

स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक विकास - 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ इसी आजादी के साथ अपने देश में विदेशी गुलामी से मुक्त होकर पहली बार भारतीय जनता ने राहत की सांस ली यह तय किया गया कि हम अपने संविधान के तहत अपने देश का और देश की जनता का बहुमुखी विकास करेंगे । इसी लक्ष्य की पुष्टि हेतु डॉ० भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में

---

1. डॉ० विवेकी राय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, पृ०-17.

संविधान सभा का गठन किया गया जिसमें जनता को कुछ मूलअधिकार देते हुए और उसके कर्तव्यों का निर्धारण करते हुए व्यवस्थापिका कार्यपालिका और न्याय पालिका का स्वरूप निर्धारण करते हुए भारत के संविधान का निर्माण किया । 26 जनवरी 1950 को भारतीय जनता ने अपनी सम्पूर्ण निष्ठा-लगन और आत्मविश्वास के साथ इसे स्वीकार किया यहीं से भारत के लोकतांत्रिक गणतन्त्र की स्थापना होती है । लोकतन्त्र के इसी ढांचे के अन्तर्गत आम चुनावों की व्यवस्था की गई जिसमें जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि राज्यों में विधान मंडल और केन्द्र में संसद का निर्माण करते हैं । आम चुनावों का यह सिलसिला आज भी जारी है । चूँकि कांग्रेस ने स्वाधीनता आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । अत: जनता की आस्था कांग्रेस के प्रति अटूट थी । नतीजतन कांग्रेस ने लगातार कई आम चुनावों में सफलता हासिल करते हुये देश के शासन की बागडोर संभाली । कांग्रेस के जुझारू नेता पंडित जवाहरलाल नेहरु भारत के प्रथम प्रधान मंत्री बने जो स्वाधीनता आन्दोलन के एक सशक्त सेनानी भी थे । देश के विकास के लिए वे समर्पित थे तथा उन्होंने बहुत कुछ किया भी । महात्मा गांधी ने हालांकि सत्ता में किसी तरह का पद-भार ग्रहण नहीं किया लेकिन आजादी के तुरन्त बाद ही उनकी हत्या हो जाने से वे अपने रामराज्य के सपने को साकार होता न देख सके । वैसे यह अच्छा ही हुआ वरना शायद अपने सपने का लगातार टूट कर बिखरना वे बर्दास्त न कर पाते । यह सब कुछ उनके लिये कितना कष्टदायक होता, अकल्पनीय है ।

राजनीति के स्वरूप का जो सपना आजादी के दीवानों में था, वह सपना आजादी के बाद कितना साकार हुआ इसे गंभीरता से परखने की जरुरत है । प्रजातन्त्र के खोल में जो घिनौने चेहरे आजादी के बाद उभरे, मूल्यहीनता भी उनसे मूल्यहीन होती चली गई । जनता को दिये गये आश्वासन महारानी विक्टोरिया के 1858 के घोषणा-पत्र की तरह कितने झूठे और

नकली थे - इन्हीं सब करुण गाथा आजादी के बाद के भारत के विकास की गाथा है । समस्त प्रसंगों का विवरण देना इतिहास का काम हो जायेगा इसलिये इतना ही समझ लेना काफी है कि जिस हिन्दुस्तानी की "आजादी की सुबह" हो विशेष रूप से राजनैतिक सुबह भारत और पाकिस्तान के बंटवारे और नोवाखाली के भीषण साम्प्रदायिक रक्त-पात के साथ हुई उसका भविष्य काफी कुछ उसी वक्त निर्धारित हो चुका था ।

लगातार सत्ता के लिये संघर्ष बढ़ता गया । साम्प्रदायिक भावनाओं का इस्तेमाल और राजनैतिक फायदे के लिये किया जाने लगा । जातियों को वोट बैंकों के रूप में देखा जाने लगा और साथ ही साथ राजनीति में एक नये प्रतियोगिता की भी शुरुआत हुई । वह प्रतियोगिता थी कुर्सी पकड़ो प्रतियोगिता । यहीं पर बाबा नागार्जुन याद आते हैं -

कागज का समया हंसता है
मत पत्रों की खींचतान में,
गुंडा गर्दी महायान है
प्रजातंत्र के हीनयान में।

किसी राजनैतिक शास्त्र के चिंतक को उद्धृत करने की बजाय नागार्जुन की यह पंक्तियां राजनैतिक हालात का कहीं ज्यादा खुलासा करती है । इतना ही नहीं गांवों के शहरीकरण के नाम पर गांवों का राजनीतिककरण शुरु हुआ । भोली-भाली जनता खामोश बेवकूफ बनती रही । जातिवाद क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद, प्रजातन्त्र के अलिखित अंग बनते गये । जनता अपनों ही के इस उपहार से उपहासात्मक बनती गई । आजादी का सारा जोश ठंडा पड़ने लगा । मगर राजनीतिक समझ का विकास भी हुआ । स्वतन्त्रता के बाद के भारतीय इतिहास के अध्याय का सिर्फ एक ही शीर्षक हो सकता है । शर्मनाक, भिक्षाकाल, 9 इस भिक्षाकाल की सबसे बड़ी याचक मुक्त का नाम है - "तटस्थता" यही नहीं जनता की हालत खासकर आम जनता [1] की हालत -

---

1. शिवप्रसाद सिंह - माध्यम जून, 1966-पृ०-

सुधरने की बजाय बिगड़ती ही गई, गांव अब भी उपेक्षित पड़े रहे । विवेकी-राय ने लिखा है "रूस और चीन में क्रांतियां हुई और हालत सुधरी" क्रांति भारत में भी हुई पर हालत नहीं सुधरी स्वराज्य आया मगर उसका राजरथ गांवों की ओर न जाकर नगरों की ओर बढ़ गया ।

इन सारी राजनीति के गतिविधियों का असर कथा साहित्य पर भी पड़ा और बड़ी ही बारीकी से इस परिवर्तन को आजादी के बाद के कथाकारों ने अपने साहित्य में रेखांकित किया । इनमें शिवप्रसाद सिंह, मारकण्डे, अमरकान्त, शैलेश मटियानी, भैरोंप्रसाद गुप्त, शानी नागार्जुन, रांगेय राघव, मधुकर, काशीनाथ सिंह, गंगाधर और राजेन्द्र अवस्थी जैसे बहुत से नये हस्ताक्षर साहित्य जगत में उभरे जिन्होंने इन समस्याओं की तरफ अपनी नज़र दौड़ाई मगर इनमें से कुछ ही ऐसे रहे, जिन्होंने ग्राम जीवन की त्रासदी को प्रेमचन्द की दृष्टि से उभारने की कोशिश की ।

आर्थिक विकास - स्वतन्त्रता के बाद के भारत के आर्थिक विकास को समझने के लिये जरूरी है कि स्वतन्त्रता के पहले के और स्वतन्त्रता आन्दोलन के लक्ष्यों को समझा जाय । इसे समझने की जरुरत इसलिये है कि हिन्दुस्तान के मौजूदा आर्थिक ढांचे की बुनियाद काफी पहले ही पड़नी शुरु हो गई थी । एक महत्व की बात यह भी है कि साहित्य की प्रवृत्तियों को प्रभावित करने वाले कारकों में आर्थिक कारकों की हिस्सेदारी सबसे ज्यादा रही है ।

भारत एक कृषि प्रधान देश है एक बार गांधी ने कहा था कि - "भारत की आत्मा गांवों में बसती है ।" इन गांवों की मूल शक्ति भारत का वह मेहनती किसान है जो अपनी मेहनत से उपजाये हुये अन्न के आधार पर अपनी जिन्दगी बसर करता है । उसकी समूची अर्थ व्यवस्था खेती पर आधारित होती है । अतः माना जा सकता है कि हिन्दुस्तान के किसान और कुल जनसंख्या का 80 % जो गांवों में रहता है - को समझे बिना हिन्दु-

स्तान की अर्थ व्यवस्था और उसके विकास को नहीं समझा जा सकता है ।

20वीं शदी के छठे दशक की शुरुआत तक भारत में जमींदारी प्रथा कायम थी । प्रत्येक गांव का एक जमींदार हुआ करता था जो किसानों पर शासन तो करता ही था उससे लगान भी वसूलता था । लेकिन सिलसिला सिर्फ यहीं तक नहीं था उसे उसने ऊपर बैठे राजा को भी नजराना देना पड़ता था । ब्रिटिश काल में इसका एक और रूप सामने आया । देशी राजाओं और क्षेत्रीय जमींदारों के अलावा एक तीसरी ताकत भी किसानों को प्रभावित करने लगी थी । यह ताकत थी ब्रिटिश राजशाही । अब जमींदार और राजा किसानों से वसूली गई संपत्ति को अपने तक ही सीमित नहीं रख सकते थे क्योंकि उन्हें अपने अंग्रेज शासकों को भी हिस्सा देना पड़ता था । लेकिन किसानों का शोषण कहीं भी सीधे-सीधे अंग्रेजों द्वारा नहीं होता था बल्कि अंग्रेजी हुकूमत में भी असल शोषक वह देशी मशीनरी ही थी जो देशी राजाओं सामंतों और पूंजीपतियों के गठबन्धन से बनी थी । अपनी हकों की हिफाजत के लिये साथ ही अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये यह देशी शोषक अंग्रेजों की जी-हुजूरी को अपना अनिवार्य धर्म समझ कर चलते थे । इस पूरी प्रक्रिया में शोषण का शिकार केवल एक ही तबका था और वह तबका था - किसानों मजदूरों का । डॉ० विवेकी राय ने लिखा है "भारतीय साहित्य विशेष कर हिन्दी साहित्य आर्थिक समस्याओं की अभिव्यक्ति के प्रति सदैव उदासीन रहा है । शायद इसका कारण यह रहा है कि कृषि प्रधान इस देश की कृषि का सम्बन्ध अर्थ" से न जुड़ कर "धर्म सम्पृक्त रहा है । जमींदारी उन्मूलन पंचवर्षीय योजनाएं, सामुदायिक विकास - योजनाओं कुटीर उद्योग, पंचायत, चकबन्दी, भूदान, सहकारी खेती और कृषि-विकास आदि के विशाल प्रभावशाली आर्थिक कार्य-क्रम नव-निर्माण की वांछित दिशा में उसे अग्रसर करने के लिए कार्यान्वित हुए जिनमें स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-लेखकों ने सामाजिक के पार्श्ववर्ती और सांस्कृतिक भूमियों से सम्पृक्त होने के कारण "जमींदारी-उन्मूलन" से सम्बन्धित स्थितियों और आर्थिक समस्याओं के

चित्रण में किंचित विशेष उत्साह प्रदर्शित किया है ।[1]

आजादी के बाद के भारत की आर्थिक व्यवस्था में बदलाव आया । यह बदलाव हमारी अपनी शासन व्यवस्था में ही एक सीमा तक संभव हुआ । 1947 की आजादी के बाद 1950 में हमने अपना संविधान लागू किया इस संविधान के मुताबिक देश के समस्त नागरिकों को आर्थिक आत्म-निर्भरता प्रदान करने हेतु शासन के नये तन्त्र का गठन हुआ था । देश के आर्थिक विकास के लिये योजनायें बनाई गईं । इन योजनाओं को पंचवर्षीय कार्यक्रम में व्यवस्थित किया गया । आर्थिक विकास के लिये पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत हुई तथा गंभीरता पूर्वक इनका क्रियानव्यन किया गया । इन योजनाओं के फल स्वरूप सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में बड़े तथा छोटे उद्योगों का विकास हुआ । गांधीजी का विशेष आग्रह कुटीर उद्योगों के विकास पर था जबकि नेहरु का विश्वास बड़े उद्योगों के विकास में भी था । पंचवर्षीय योजनाओं ने बड़े तथा छोटे दोनों ही स्तरों पर उद्योगों को विकसित करने में मदद पहुंचाई । परिणामत: उत्पादन के साधन बढ़े और इसीक्रम में उत्पादन भी बढ़ा । बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ ।

इनके आलावा एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि काफी पहले से चली आ रही जमींदारी प्रथा का "जमींदारी उन्मूलन अधिनियम" के द्वारा अन्त किया गया । और हिन्दुस्तान की एक परम्परागत सामाजिक आर्थिक बुराई का काफी सीमा तक समापन भी हुआ । जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से किसानों को भूमि के स्वामित्व के अधिकार मिले और बहुत दिनों बाद वह भूमि जिस पर वे मेहनत करते थे तथा जिसका लाभ जमींदार उठाते थे, उनकी अपनी हुई । रियासतों रजवाड़ो का भारत संघ में विलय हुआ जिसमें सरदार पटेल की भूमिका बड़ी ही महत्व की रही । उन्होंने स्वयं जाकर विनय और शक्ति दोनों का प्रयोग करते हुये रियासतों रजवाड़ों को भारत संघ में

---

1. विवेकी राय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, पृ॰-178.

मिलाया । इसके परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे राजाओं महाराजाओं के सभी अधिकार समाप्त हुये और जनता को राहत और चैन का अहसास हुआ । इतना ही नहीं बल्कि आजादी के बाद के दौर में राष्ट्रीय सरकार ने सहकारी संगठनों को संरक्षण दिया तथा सहकारी संस्थाओं को आर्थिक सहायता और विशेष अनुदान दिये ।

किन्तु इन सारी उपलब्धियों के बावजूद आजादी के बाद के आर्थिक ढाचे से जुड़े हुये कुछ सवाल आज मुंहबाऐ हुये खड़े हैं । बढ़ती हुई मंहगाई गरीबी और बेरोजगारी की लम्बी कतार हमें यह सोचने को विवश करती है कि इन तमाम पंचवर्षीय योजनाओं से हमने क्या हासिल किया ? लेकिन इस सवाल का जवाब पंचवर्षीय योजनाओं की निरर्थकता में नहीं ढूंढा जा सकता । हमें तस्वीर के दूसरे पहलुओं को भी देखना होगा । आजादी के बाद की समस्याओं की बुनियाद में एक महत्वपूर्ण वजह जनसंख्या का लगातार बढ़ते जाना रहा है । जनसंख्या के साथ ही साथ उत्पादन साधन भी बढ़े, लेकिन इनमें सामंजस्य होने की बजाय असंतुलन बढ़ता गया । यहीं पर राजनैतिक और नौकरशाही का रिश्ता भी जुड़ता है । देखा जा सकता है कि राजनीतिक और नौकरशाही के स्तरों पर बढ़ते हुये भ्रष्टाचार घूसखोरी और भाई-भतीजावाद ने इस असन्तुलन को और भी गहरा किया । यहाँ माना जा सकता है कि "इसका कारण यह भी था कि स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वीकृत शासन पद्धति प्रकारान्तर से पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था की पोषक थी ।"[1]

इस बात को मान लेने पर भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर एक बारगी प्रश्न चिन्ह लग जाता है । क्योंकि अमीरों का और अमीर होते जाना और गरीबों का और गरीब होते जाना इस सन्देह को और भी मजबूत करता है ।

---

1. डॉ० हेतु भारद्वाज - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा, पृ०-42.

गरीब और अमीर के बीच में लगातार गहराती हुई इस खाई ने आम आदमी के मन में एक तरह का असुरक्षा बोध पैदा कर दिया तथा इस बोध ने व्यक्तियों के सामाजिक तथा पारिवारिक सम्बन्धों पर गहरा असर डाला ।

आर्थिक असन्तुलन का एक पहलु उस त्रासदी से भी जुड़ा हुआ है जो देश की आजादी के साथ ही साथ देश विभाजन के रूप में घटित हुई थी । विभाजन ने जनसंख्या का स्थानांतरण और दंगों में उपजी हत्यारी संस्कृति से हुई जान-माल की अपूर्णीय क्षति ने पूरे आर्थिक ढाचे को एक बार हिला कर रख दिया । इस विभाजन के कुप्रभावों की व्याख्या इतिहासकारों के साथ ही साथ साहित्यकारों ने भी बड़े जोरदार ढंग से की है । यशपाल का "झूठा सच्च" राही मासूम रज़ा का "आधा गाँव" भीष्म साहनी का "तमस" आदि तमाम उपन्यास देश-विभाजन की त्रासदी और उससे पैदा हुई उन तमाम समस्याओं का जिक्र करते हैं जिनसे देश को जुझना पड़ा था । और जिनसे आज भी देश जुझ रहा है । मन्नू भण्डारी के लेखन विशेषकर "महाभोज" में भी आर्थिक ढाँचे की इसी चरमराहट को लगातार सुना जा सकता है ।

रचना की आधार भूमि

"महाभोज" के सिलसिले में इसकी आधार भूमि का पता लगाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आज का उपन्यास जीवन से बिना जुड़े हुये नहीं लिखा जा सकता, इसका सम्बन्ध हमारे समाज से काफी गहराई तक जुड़ा होता है शायद इसी को ध्यान में रख करके उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया है । महाकाव्य इसलिये कि इसमें कोशिश की जा रही है कि जीवन व्यक्ति और समाज को आपस में जोड़ कर उसकी सम्पृक्तता के साथ प्रस्तुत किया जाय । यह प्रस्तुतीकरण निश्चित ही उस पूरे ढाँचे को एक तरह की जीवन्तता प्रदान करती है । जो वाकई हमारे सामने मौजूद है, जिसे हम जी रहे हैं । मगर जिसे हम महसूस नहीं कर पा रहे हैं । अगर महसूस कर भी पा रहे हैं तो निहायत सतही तौर पर उसकी बारीकियों में जाकर नहीं । इसी बारीकी से साक्षात्कार कराने का काम साहित्य का है, साहित्यकार का है । उपन्यास ने इस दायित्व का निर्वाह काफी सफलता से किया है ।

यहीं पर यह सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है कि आखिर "महाभोज" उपन्यास की रचना का आधार क्या है इसके पहले हम भारत में स्वतन्त्रता के बाद के राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक विकास को उसके महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ रेखांकित कर चुके हैं । आजादी के बाद की सबसे महत्वपूर्ण घटना या दुर्घटना इस सदी के आठवें दशक में घटित होती है । जिसका असर हमारे समाज पर और हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर अभी तक कायम है । यह घटना आजादी के बाद लगे आपातकाल की घटना है जिसमें एक तरफ सत्ता का निरंकुश चेहरा उभरकर सामने आया तो उसके विरोध में जनता का उबल कर बाहर निकलने वाला आक्रोश भी सड़कों पर आया । हिन्दुस्तान के गाँव और खेत-खलिहान शहर और मिलों की चिमनियों से एक नारा गूँज उठा सिंहासन खाली करो कि जनता आती है । इन सब की पृष्ठभूमि जो

राजनैतिक प्रक्रिया काम कर रही थी उसको उसी रूप में पिछली पंक्तियों में विशेषत: इस घटना का इतिहास लिखने वालों के शब्दों में यथातथ्य कहने की कोशिश की गई है लेकिन इस राजनैतिक सन्दर्भ के अलावा इसका अपना एक साहित्यिक सन्दर्भ भी है । आपातकाल की घटना ने जहाँ जयप्रकाश को "सम्पूर्ण क्रांति" का नारा देने को मजबूर किया और मजबूर किया इस देश की जनता को अपने दबे हुये आक्रोश को इस आन्दोलन में हिस्सेदारी करके व्यक्त करने को, वहीं साहित्यकारों के साहित्य सर्जन में भी एक नयी गति दी, एक बार फिर से आजादी के बाद पहली बार कलम के सिपाही पैदा हुये जिन्होंने हथियार की तरह इस्तेमाल करते हुये सत्ता के निरंकुश चेहरे का परदाफाश किया और सोयी हुई जनता को जगाने का काम किया ।

ऐसे बहुतेरे नाम मिल जायेंगे हिन्दी साहित्य में जिनकी लेखनी की धार बहुत तेजी के साथ आपातकालीन की क्रूरता के खिलाफ सामने आई । कितनों ने तो इस क्रूरता के खिलाफ प्रतिदिन लिखने का संकल्प किया और लिखा भी । साहित्यकारों का आन्दोलित होना स्वाभाविक इसलिये था कि वे भी जनता के हिस्से थे उनके दु:ख दर्द गहराई से जुड़े हुये थे उनकी लेखनी पर भी उसी तरह आक्रमण हो रहे थे, जैसे आम आदमियों के जिन्दगी जीने के मूल अधिकारों पर । यह सब कुछ कानून के तहत हो रहा था । उस कानून के तहत जिसे हमने आजादी के रक्तरंजित इतिहास के बाद भावी भारत के अमन और चैन के लिये सुख और समृद्धि के लिये बनाया था । बिडम्बना यह कि इसका ढाँचा प्रजातांत्रिक था । बेचारा प्रजातंत्र आजादी के बाद कितना असहाय हो गया - एक ऐसे खिलौने की तरह दूसरों पर निर्भर और असहाय - जिसे कोई भी प्रजातन्त्र का ढोंग रचाये भ्रष्ट राजनैतिज्ञ अपनी मर्जी के मुताबिक अपनी चाही हुई दिशा में चाबी देकर चला सकता था ।

इसके खिलाफ साहित्य में आक्रोश की जो अभिव्यक्ति हुई उसका जिक्र करने में विषय का जरुरत से ज्यादा विस्तार होने के भय से उसे यहाँ छोड़

देना ही बेहतर समझता हूँ । एक नाम का उल्लेख इसलिये करना जरूरी है कि वह नाम इस पूरे प्रकरण में शायद सबसे महत्वपूर्ण है । वह नाम है हिन्दी के चिरपरिचित कवि भवानी प्रसाद मिश्र का जिसे हम सब भवानी भाई के नाम से अच्छी तरह जानते और पहचानते हैं । भवानी भाई ने आपातकाल के दौरान लगातार तीनों वक्त इसके खिलाफ कविताऐं लिखकर साबित कर दिया कि साहित्यकार काले कानूनों और उनको अमल में लाने वाली संगीन की नोकों से दबकर खामोश नहीं रह सकता है । उन्होंने अपनी इस साहित्य साधना को जिसमें तीनों वक्त तीन कविताएं लिखने का अटल निश्चय था । "त्रिकाल संध्या" का नाम दिया । उनका संकलन भी इसी नाम से प्रकाशित हो चुका है । उसकी एक कविता "चार कौऐ उर्फ चार हौव्वे" उन चारों प्रतिनिधि पात्रों का खुलासा करती है जो आपातकाल के इस पूरे खेल के सूत्र-धार थे ।

हिन्दी के एक और जनता के कवि जिनकी पूरी कविता यात्रा जीवन की संघर्ष यात्रा है, वे भी अपने इसी आक्रोश को जो इस पूरे नाटक के खिलाफ था व्यक्त करते हुये लिखा - "अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन ।1971। की कविता "हरिजनगाथा" - उनका यह आक्रोश इमरजेन्सी की क्रूर यातना के बाद स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा चुनावों की घोषणा के बाद व्यक्त हुआ क्योंकि जनता के साथ ही साथ बाबा नागार्जुन का भी प्रजातन्त्र के इस चुनावी नाटक पर से यकीन उठ चुका था । इसी तरह और भी तमाम साहित्यिक नाम है, जिनका उल्लेख न कर पाने की क्षमा मैं पहले ही मांग चुकी हूँ ।

"महाभोज का रिश्ता भी उसी दौर की उपज होने के कारण कहीं न कहीं इस प्रजातन्त्र के नाटक से जुड़ता है इसकी छानबीन जरूरी है, जरूरी इसलिये भी है कि मन्नू भण्डारी के रचनामानस की उस मजबूरी की तलाश की जाए जिसने इस उपन्यास के लिये प्रेरणाभूमि का काम किया । यह

सवाल इसलिये भी उठता है कि इसके पहले की मन्नू भण्डारी की रचना-यात्रा जिसमें उनके दो उपन्यास आते हैं उनका सन्दर्भ क्रमश: सामाजिक और पारिवारिक है । बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि पारिवारिक ही ज्यादा है । जिसमें दोनों की ही समस्या दाम्पत्य जीवन में आधुनिक सन्दर्भों में आ रहे महत्वपूर्ण बदलाव और उससे पैदा हुई असंगतियां तो क्या मन्नू भण्डारी का यह उपन्यास भी उसी समस्या और उसी कोण से लिखा गया है ? इसका जवाब हमें उनके एक इन्टरव्यू से मिलता है जिसमें उन्होंने कहा है -

"मैं इन दिनों एक राजनीतिक उपन्यास "महाभोज" पूरा करने जा रही हूँ पिछले दिनों "बेलछीकाण्ड" जैसी घटनाओं ने मुझे काफी उत्तेजित किया । हमारे राजनीतिज्ञ नेता और भ्रष्टशासकीय मशीनरी जिस तरह से हमारी गम्भीर सामाजिक समस्याओं के साथ घिनौने राजनीतिक स्वार्थों के खेल खेलते हैं यह एक दर्दनाक दास्तान है "त्रिशंकु" में संगृहीत मेरी कहानियाँ "तीसरा हिस्सा" और अ-लगाव में आपको इसका संकेत मिलेगा । मेरे मन का यही दर्द इस उपन्यास में गहरे और व्यापक रूप में छलका है ।[1] §27 मई, 1979§

मन्नू जी के इस कथन के मुताबिक यह साफ जाहिर होता है कि बेलछीकाण्ड जैसी क्रूर घटना ने इन्हें काफी गहरे तक कुरेदा था । इसलिये "महाभोज" उपन्यास को उसके संदर्भगत परिप्रेक्षा में समझने के लिये जरूरी है कि बेलछी काण्ड को पूरी तौर से समझा जाए ।

बेलछीकाण्ड - हिन्दुस्तान के हिन्दी प्रदेश का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है - बिहार प्रदेश । यह प्रदेश कई महान् नेताओं का जन्म और कर्म क्षेत्र होने के साथ ही साथ राष्ट्रीय राजनीतिक हलचलों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है । देश ने जब भी किसी नयी करवट के लिये अंगडाई ली तो उसमें बिहार का

---

1. डॉ० बंसीधर डॉ० राजेन्द्र मिश्र - मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ० - 102 .

स्वर सबने सुना । इस संवेदनशील प्रदेश की राजधानी है पटना । बेलछी काण्ड पर आने के पहले इसकी थोड़ी सी पृष्ठभूमि समझना जरूरी है जिसका सम्बन्ध राष्ट्रीय राजनीतिक परिवर्तन से है ।

1975 में भारत की तत्कालीन प्रधान मंत्री स्वर्गीया श्रीमती-इंदिरागांधी ने इमरजेन्सी की घोषणा की । इमरजेन्सी लागू कर दी और देश एक काले सपने से गुजरने लगा, जनता के दमन का एक लम्बा दौर चला । उबी हुई जनता ने क्रान्ति का नारा दिया और यह क्रान्ति समूचे नेतृत्व को बदलने के लिये आहूत की गई सम्पूर्ण क्रान्ति बनी । नतीजतन 1977 में समस्त विरोधी पार्टियों के गठबन्धन से पराजित करते हुये देश का शासन संभाला । जन-आक्रोश की यह चरम अभिव्यक्ति थी जनता ने सोचा कि अब उसकी समस्याओं का अन्त हो गया लेकिन ऐसा नहीं हुआ । जनता पार्टी के शासन काल के दौरान ही 27 मई 1977 को बिहार के पटना जिले के एक गांव बेलछी में चौदह हरिजनों की क्रूर हत्या कर दी गई । उसी इलाके के कुछ प्रभावशाली लोगों द्वारा यह काण्ड किया गया था । इस घटना का ब्यौरा देते हुये "जून, 1977 को नवभारत टाईम्स ने पटना जिले में हरिजनों की नृशंस हत्या ।" शीर्षक से लिखा था ••• दो बच्चों सहित 13 जिंदा जला दिये - एक को गोली मार दी, नयी दिल्ली 3 जून (समा) पिछले महीने की 27 तारीख को बिहार में पटना जिले के एक गांव में एक हरिजन को गोली मार कर हत्या कर दी गयी और 13 अन्य को हाथ पैर बांध कर आग में जिंदा जला दिया गया । यह सनसनी खोज खबर एक अत्यंत विश्वस्त सूत्र द्वारा "समाचार" को आज यहां दी गयी हत्या करने वाले उस गांव के आस-पास के कुछ ऐसे प्रभाव-शाली लोग बताये जाते हैं जिनका नाम ही "बंदूकधारी पार्टी" पड़ गया है पिछले कुछ वर्षों से उन लोगों ने एक गिरोह के रूप में उस क्षेत्र में आतंक फैला रखा है । राजनीतिक दलों के कुछ प्रमुख नेताओं का प्रश्रय भी इन्हें इस बात के बदले मिलता रहा है कि चुनाव के समय वे उन नेताओं की मदद करें, यह

घटना पटना जिले के बाढ़ थाने के बेलछी गांव में हुई, बताया जाता है कि "बंदूकधारी पार्टी" के लगभग 50 सशस्त्र लोगों ने भरी दोपहरी को गाँव पर धावा बोल दिया । चालीस वर्षीय एक हरिजन को उसके दरवाजे पर गोली मार दी, फिर लकड़ी और उपलों का भारी जमाव करके उस पर डीजल छिड़क कर आग लगा दी पहले मृत हरिजन को उसमें फेंका, उसके बाद दो बच्चों (9 साल, 13साल) और 30 वर्ष से 40 वर्ष की आयु के 11 अन्य लोगों को उनके घरों से घसीट कर हाथ पैर बांध कर एक-एक करके उस भट्टी में फेंक दिया गया । जल रहे व्यक्तियों की चीख पुकार पर उधर दौड पड़े उनके परिवारों के लोगों को पकड़ कर दूर भगा दिया गया ।

अखबार की इस रिपोर्ट को देखने पर साफ जाहिर होता है कि आजाद भारत में जिसमें जीने और विकसित होने का सभी को समान अधिकार भारतीय संविधान ने दिया है एक मखौल बनकर रह गया है । आजादी के तीस साल बाद भी गांधी जी के "हरिजन" को अपना अधिकार हासिल न हो सका है और कीड़े-मकोड़ों की तरह उसकी मौत भी उतनी ही सस्ती और आसान है । जमींदारी के खत्म होने के बाद भी हर इलाके के सवर्णों और साधन सम्पन्न लोगों का वर्चस्व कायम है और किसी भी आम आदमी को मारना या मरवा देना उनके बांये हाथ का खेल है ऐसे लोगों को पूर्ण राजनैतिक संरक्षण प्राप्त होता है और वे सब कुछ करके बिना किसी डर के घूमते हैं । इन्हीं चीजों का अहसास मन्नूजी ने काफी गहराई से किया और "महाभोज" को देख कर कहा जा सकता है कि उनका यही अहसास अपने पूरे साहित्यिक रूप में "महाभोज" में व्यक्त हुआ है ।

****

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

महाभोज में व्यंजित राजनीति का विद्रूप

(क) पृष्ठभूमि

"महाभोज" की राजनीतिक चेतना का सवाल उठते ही साहित्य और राजनीति के रिश्तों पर विचार करना जरूरी हो जाता है। खासतौर से तब जबकी आजादी के बाद के साहित्य में विशेष रूप से राजनीतिक चेतना का प्रधान स्वर सुनाई पड़ता रहा है। वस्तुत: आजाद होने के साथ ही साथ हिन्दुस्तान की राजनीति ने अपने प्रजातांत्रिक ढांचे में एक व्यवस्थित शुरुआत की। इस व्यवस्थित शुरुआत का सम्बन्ध हिन्दुस्तान के समाज और उसकी जनता की खुशहाली से गहरे तक जुड़ा था।

यह सही है कि आजादी के काफी पहले से ही हिन्दुस्तानी जनता में राजनैतिक चेतना का ज्वार उमड़ना शुरू हो गया था। इतना ही नहीं बल्कि अपने स्वाधीनता आन्दोलन से ही अपने भावी राजनैतिक स्वरूप को निर्धारित करने की परिपक्वता हिन्दुस्तान की जनता और आन्दोलन के नेताओं ने हासिल कर ली थी। 1857 के पहले स्वाधीनता संग्राम से लेकर 1947 के भारत छोड़ो आन्दोलन तक का इतिहास विश्व स्तर पर चल रहे साम्राज्यवाद का जुआ उतार फेंकने वाले अन्तर्राष्ट्रीय महायुद्ध के विशाल इतिहास का एक महत्व-पूर्ण हिस्सा है जिसे नकार कर राजनैतिक चेतना के स्वरूप का विश्लेषण करना मुश्किल होगा। अपने सामान्य अर्थों में राजनैतिक चेतना का आशय उस चेतना या बोध से है जो परिवेश में चल रहे राजनीतिक घटना क्रम की समझ विकसित करने के बाद निर्णीत की जाती है। अरस्तु ने भी माना है कि मनुष्य अपने सही अर्थों में एक राजनीतिक प्राणी है।

चूँकि वह समाज का अंग होता है साथ ही समाज की उस व्यवस्था का भी एक अंग जो समाज को संचालित करती है तथा जिससे समाज में रहने वाला प्रत्येक प्राणी कमोवेश अपने समाज की राजनीति को अपने स्तर पर समझता है और निर्णय लेता है । कृष्ण कुमार बिस्सा ने लिखा है । "हमारे दैनिक जीवन की राजनीति की व्याप्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि विज्ञान साहित्य, धर्म, उद्योग-नीति, कूटनीति आदि क्षेत्रों तथा व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्वजनीन सम्बन्धों में राजनीति की पैठ हो गयी है ।" ।

हिन्दी कथा साहित्य का जो इतिहास पहले अध्याय में दिया गया उसमें साफ जाहिर होता है कि प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों में राजनीतिक, चेतना के स्वर काफी तेजी से सुनाई पड़ने लगते हैं लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि प्रेमचन्द युग तथा स्वयं प्रेमचन्द में राजनैतिक चेतना का अभाव था । राजनैतिक स्तर पर जितने सचेत प्रेमचन्द थे उतनी सचेतनता कम ही साहित्यकारों में देखने को मिलती है । प्रेमचन्द की चेतना और अन्यों की चेतना में जो बुनियादी फर्क लक्षित किया जा सकता है वह इसके स्वरूप को लेकर है । प्रेमचन्द अपने समय की राजनीति के सभी पहलुओं के साथ जुड़े हुऐ थे । यह जुड़ाव किसी तरह की प्रतिबद्धता को जन्म न दे सका और प्रेमचन्द एक सजग और सच्चे साहित्यकार के रूप में दो टूक तरीके से अपनी राय जाहिर करते रहे । इस की वजह शायद अपने समय के किसी राजनैतिक दल के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का न होना रहा । पिछली पंक्ति में प्रेमचन्द को प्रतिबद्ध करने से मेरा यही आसय था जो अपने मेहनत के बूते पर जिन्दगी जीते हुये भी तमाम तरह के शोषण और यंत्रणाओं का शिकार होता रहता है । प्रेमचन्द जनता के साथ सोचने वाले साहित्यकार थे, जनता के बारे में सोचने वाले साहित्यकार नहीं ।

---

1. कृष्ण कुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, दिनमान प्रकाशन, सन् 1984 ; पृ.-4.

सन् 1936 में मार्क्स के दर्शन के आधार पर जिसका उपयोग पहले पहल राजनैतिक परिवर्तन के हथियार के रूप में किया गया, साहित्य के क्षेत्र में हिन्दुस्तान में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई । इस स्थापना में साहित्य को राजनैतिक परिप्रेक्ष्य दिया । नतीजतन सन् 1936 के बाद का समय जो उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द के ठीक बाद का समय है, राजनैतिक चेतना व्यवस्थित ढंग से साहित्य में उभरी । इसके लगभग 10 वर्षों बाद सन् 1947 में देश के आजाद होने पर देश का नेतृत्व हिन्दुस्तान की जनता के हाथों में आया । आजादी के बाद कायम किये गये प्रजातंत्र की असलियत जैसे खुलती गई वैसे-वैसे साहित्य के भी राजनैतिक तेवर मजबूत होते गये । सन् 1963 से 1983 तक के दो दशकों की भारतीय राजनीति दल-बदल के शर्मनाक घटनाओं से कलंकित है तो वहीं दूसरी तरफ जनता के आक्रोश के शिकार इमरजेन्सी लागू करने वाली कांग्रेसी सरकार का पतन देश के लोकतांत्रिक ढाँचे की सफलता का संकेत भी देता है ।

साहित्यकारों के इसी सजग नज़रिये से तमाम रचनायें सामने आती रही हैं । इनमें श्रीलाल शुक्ल का "राग दरबारी" राही मासूम रज़ा का - "कटरा बी आरजू" भगवती चरण वर्मा का "सबहिं नचावत राम गुसाईं" के अलावा और भी तमाम नाम लिऐ जा सकते हैं । मन्नू भण्डारी के महाभोज में भी एक ख़ास समय की राजनीतिक उथल-पुथल से उपजी मानसिकता और परिस्थितियों का साहित्यिक चित्रण काफी सशक्त रूप में मौजूद है ।

कृष्ण कुमार बिस्सा ने राजनैतिक चेतना के सिलसिले में महाभोज का मूल्यांकन करते हुये लिखा है कि "लेखिका ने इस उपन्यास की सृजनात्मक प्रेरणा के सम्बन्ध में स्वयं कुछ भी उल्लेख नहीं किया है । इसी वाक्य के शेष हिस्से बिस्सा ने यह मान लेने के बाद लेखिका ने "महाभोज" की रचना के कारणों का कहीं जिक्र नहीं किया है, अनुमान लगाया है कि "फिर भी इस कृति को पढ़ने के बाद कहा जा सकता है कि लेखिका के समक्ष आडम्बर युक्त राजनीतिज्ञों के

प्रपंच उनकी स्वार्थ परता और उसी से अभिप्रेत होकर उसका नग्न चित्रण लेखिका ने अपनी इस कृति में किया है ।" 1

अव्वल तो बिस्सा को तथ्यों की सही जानकारी नहीं है अथवा उन्होंने मन्नू भण्डारी के विचारों को पढ़ा नहीं है । फिर भी उनका अनुमान जो वाक्य के अगले हिस्से में आता है काफी सही बैठता है । जहाँ तक मन्नू भण्डारी के "महाभोज" की रचना के बारे में कारण बताने का सवाल है, उसे बिस्सा ने नजर अन्दाज किया है । सन् 1984 में प्रकाशित अपनी पुस्तक, जिसमें उन्होंने यह घोषणा की है, उसके काफी पहले जबकि "महाभोज" लिखा जा चुका था, किन्तु प्रकाशित नहीं हुआ था, मन्नू भण्डारी ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था, "मैं इन दिनों एक राजनीतिक उपन्यास "महाभोज" पूरा करने जा रही हूँ । शीघ्र ही प्रेस में देना है उसे । पिछले दिनों "बेलछी-काण्ड" जैसी घटनाओं ने मुझे काफी उत्तेजित किया । हमारे राजनीतिक नेता और भ्रष्टशासकीय मशीनरी जिस तरह से हमारी गम्भीर सामाजिक समस्याओं के साथ घिनौने राजनीतिक स्वार्थों के खेल खेलते हैं यह एक दर्दनाक दास्तान है ... मेरे मन का यही दर्द इस उपन्यास में गहरे और व्यापक रूप से छलका है ।" 2

मन्नूजी का यह साक्षात्कार सन् 1983 में प्रकाशित हो चुका था, जबकि सन् 1984 में बिस्सा जी ने इसे बिसार कर अपनी राय जाहिर की है । मन्नू भण्डारी का खुद का कथन "महाभोज" के एक "राजनैतिक उपन्यास घोषित करता है अगर उनकी ही बात पर विश्वास किया जाय तो यह "राजनैतिक उपन्यास है । हालांकि उपन्यास के कथ्य से गुजरने के बाद कहीं ज्यादे सही

---

1. कृष्ण कुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, पृ.-35.
2. डॉ0 बंसीधर डॉ0 राजेन्द्र मिश्र - मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ.-102.

निष्कर्ष प्राप्त हो सकेगा । अनेक आलोचकों ने मन्नूजी के इस उपन्यास को राजनीतिक उपन्यास माना है । अजय तिवारी के अनुसार "महाभोज सामाजिक उत्पीड़न और उस पर टिकी हुई व्यवस्था-पोषक राजनीति के विरुद्ध संवेदनशील रचनाकार की विनम्र किन्तु सशक्त पूर्ण प्रतिक्रिया है ।" 1

"महाभोज की प्रधान घटना है - बिसेसर नाम के एक हरिजन युवक की हत्या । पूरा उपन्यास इसी घटना की तफ्तीकात और इसी सिलसिले में आये हुये तमाम प्रसंगों के साथ विकसित होती है । बिसेसर की मौत का राजनीतिक कारण ही उपन्यास में उभारा गया है और इसके माध्यम से राजनीति के उन फन्दों को भी खोलने की कोशिश की गई है जिनसे लेखिका का गहरा सरोकार रहा है तथा जिन्होंने लेखिका को काफी गहरे तक प्रभावित किया है । डॉ० सुशीला व्यक्तिगत दुख दर्द अन्तर्द्वन्द्व या आन्तरिक नाटक को देखने से भिन्न विद्यमान "परिस्थितियों के बीच राजनीति के सन्दर्भ में मनुष्य की नियति का आलेख प्रस्तुत करता है ।" 2

---

1. अजय तिवारी - आलोचना, अंक-64, 65, पृ०-67.
2. डॉ० सुशीला शर्मा - हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प, पृ०-427.

(ख) राजनैतिक दलों की भूमिका

आज के युग की राजनीति का सबसे बड़ा हिस्सा चुनाव है। प्रजातन्त्र जैसे शब्दों का इस्तेमाल इन्हीं चुनावों के आधार पर होता है। इन चुनावों से बनी सरकारों का स्वरूप अब तक अच्छा और बुरा दोनो ही रहा है। यह एक सामान्य-सी बात हो सकती है लेकिन इसकी अच्छाई और बुराई के अनुपात का विश्लेषण करने पर सामने आने वाली बात मायने रखने वाली होगी। यह इसलिये महत्वपूर्ण होगी की इसके बुरे पक्ष कहीं ज्यादा रहे हैं और इसे काफी गंभीरता से महसूस भी किया गया है। "महाभोज" इसी अहसास का एक जीता-जागता दस्तावेज है। इसकी जीवन्तता ही इसमें अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना के उस स्वरूप का निर्धारण करती है जो एक काल खण्ड विशेष का प्रामाणिक दस्तावेज तो है ही, आजादी के बाद भारतीय प्रजातन्त्र में उभरे राजनीतिक भ्रष्टाचार को भी उजागर करती है।

चूँकि उपन्यास की प्रधान घटना बिसेसर की मौत है, इसलिये इसी को केन्द्र में रख कर राजनीतिक भ्रष्टाचार से जुड़े हुऐ तमाम सवालों को उठाया गया है। एक साधारण हैसियत वाला आदमी बिसेसर आम जनता के कारण सत्तारूढ़ दल का विरोधी हो जाता है। फलस्वरूप उसे सत्तारूढ़ दल के आक्रोश का शिकार होना पड़ता है। एक दिन ऐसा आता है जबकि बिसेसर की लाश सड़क के किनारे पुलिया पर पड़ी मिलती है। यह वही बिसेसर है जिसे पिछली सरकार ने सत्य की लड़ाई लड़ने के लिये बिना किसी अपराध के चार वर्षों के लिये जेल भेज दिया था। और वहाँ से वह पुलिस की मार से घायल शरीर लेकर निकलता है। इसी सत्यनिष्ठा के चलते वह आगजनी काण्ड की सच्चाई के सबूत इकट्ठे करता है और उनके आधार पर दोषी व्यक्तियों को दण्डित करवाने का प्रयास भी करता रहता है। यही प्रयास उसकी मौत का कारण बनता है क्योंकि आगजनी काण्ड की असलियत के खुल

जाने का मतलब सत्तारूढ़ दल की सत्ता पर आँच आना है और ऐसा कोई भी सत्तारूढ़ दल संभव होने नहीं दे सकता है, चाहे इसके लिये कितने ही बेकसूर बिसुओं को रास्ते से हटा देना हो । बिसू आम आदमी का प्रतीक है, जिसमें सामान्य जन की समस्त विशेषताऐं और कमजोरियां मौजूद हैं । वह शोषण के खिलाफ उभरती हुई एक आवाज है, महज एक आदमी नहीं । जनता को उससे प्यार है क्योंकि वह उनके साथ रहता है । इस लड़ाई का अन्जाम शायद वही है जो बिसू के साथ हुआ ।

बिसू की मौत से ही जुड़ी हुई उपन्यास की दूसरी प्रमुख घटना है विधान-सभा की एक सीट का चुनाव । यह वही सीट है जिसके क्षेत्र में बिसू का गांव पड़ता है और ऐन चुनाव के वक्त बिसू की मौत महत्वपूर्ण घटना बन जाती है । यह घटना आम आदमी के लिये संवेदना के स्तर पर महत्वपूर्ण हो सकती है किन्तु एक ऐसा वर्ग भी है जिसके लिये बिसू की मौत मानवीय संवेदनात्मक आधारों पर महत्वपूर्ण न होकर व्यक्तिगत लाभ-हानि को लेकर महत्वपूर्ण है । यह वर्ग कई खेमों में बंटा हुआ वर्ग है जो बिसू जैसे लोगों की मौत को कैश करवाने में बेहद कुशल हैं । इनके कैश कराने के तरीके अलग हो सकते हैं मगर लक्ष्य एक ही है । बात को और साफ करने के पहले "महाभोज" में वर्णित दलों को उनके सन्दर्भ सहित समझना जरुरी है ।

"महाभोज" उपन्यास में दो प्रमुख राजनीतिक दल सामने आते हैं । सत्तारूढ़ के नेता दा-साहब हैं जबकि विरोधी दल के नेता सुकुल बाबू हैं । सुकुल बाबू 10 वर्षों तक प्रान्त के मुख्य मंत्री रह चुके थे । पिछले दो चुनाओं में सुकुल बाबू की हार हुई और दा-साहब की जीत । बीच में एक सीट का उप-चुनाव बिसू की मौत को महत्वपूर्ण बना देता है और दा-साहब और सुकुल बाबू को चुनावी पैंतरे बाजी के साथ "महाभोज" में व्यंजित राजनीति का विद्रूप सामने आता है । मौजूदा प्रजातन्त्र में बिसू जैसों की मौत आम बात है जिसकी नोटिस लेने का समय किसी राजनीतिज्ञ के पास न होता है । अवसर-वादीता, राजनीतिक हथकंडों में एक महत्वपूर्ण हथकंडा है । सरोहा की

एक मामूली सी घटना पूरे चुनाव का रुख बदल सकती है, लेखिका ने बड़ा ही सूक्ष्म व्यंग्य करते हुए लिखा "सच पूछा जाये तो बड़ा न आदमी होता है न घटना यह तो बस मौके-मौके की बात होती है । मौका ही ऐसा आ पड़ा है । इस समय तो सरोहा में पत्ते का हिलना भी एक घटना को अहमियत रखता है । डेढ़ महीने बाद ही तो चुनाव है ।" [1]

इस तरह दो-टूक लहजे में चुनावी मनो-विज्ञान का वर्णन करते हुए लेखिका बीच में घटनाओं के ही हवाले से अपनी बात भी कहती चलती है । सत्तारूढ़ दल और विरोधी दल का एक दूसरे के खिलाफ शतरंज की गोटियां फिट करना इस पूरे चुनावी जंग का प्रमुख आकर्षण है । अपने को जनता का हिमायती घोषित करने और दूसरे को जन विरोधी सिद्ध करने में दोनों दल अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं ।

अगर यह किसी साधारण उम्मीदवार से दा-साहब की पार्टी के टकराने का सवाल रहता तो संभवत: दा-साहब को कम चिन्ता रहती, मगर यहाँ तो स्वयं सुकुल बाबू, जो विरोधी दल के नेता होने के साथ ही साथ अच्छा खासा जन-समर्थन भी रखते हैं का इस चुनाव में खड़ा होना ही दा-साहब के लिये चिन्ता का प्रमुख विषय है । मजे की बात यह है कि राजनीति के धुरन्धर खिलाड़ी सुकुल बाबू को जनता के पिछले चुनाव में करारी शिकस्त दी थी अपनी इज्जत बचाने के लिये सुकुल बाबू ने एक नया पांसा फेंका और घोषणा की कि अब सक्रिय राजनीति से वह सन्यास ले लेंगे । मगर जैसे शिकार को देखकर शेर के मुँह में पानी आ जाता है वैसे ही सरोहा के चुनाव को देख कर सुकुल बाबू के मुंह में भी पानी आ गया । लेखिका ने एक बार फिर से सुकुल बाबू के इस कदम पर अपनी राय जाहीर की है"- क्या करते पद से उतरने के बाद उन्होंने यह महसूस किया कि जनता की सच्ची सेवा उच्च पद पर बैठकर

---

1. मन्नू भण्डारी - "महाभोज" - पृ॰-12.

हो को जा सकती है, और जनता की सेवा का संकल्प उन्होंने अपनी उस कच्ची उम्र में लिया था जिस उम्र के संकल्प-विकल्प अनचाहे ही आदमी के जीवन का अभिन्न अंग बन जाते हैं।" 1

सुकुल बाबू के विरोध में खड़ा व्यक्ति लखन है जो पार्टी का बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति न होते हुये भी दा-साहब का खास आदमी होने के कारण चुनाव के लिये टिकट प्राप्त करता है। सरोहा में हुई दुर्घटना पर मचे हंगामें से लखन को अपनी हार के आसार करीब दिखाई देने लगते हैं। दा-साहब के पास वह काफी उत्तेजना में जाता है, ताकी दा-साहब अपना मौन तोड़े और उसे सहयोग दें। दा-साहब काफी खामोशी से सब कुछ सुनते हैं। लखन की प्रमुख चिन्ता यह है कि अगर सुकुल बाबू की सरोहा में होने वाली मीटिंग सफल हो गई तो उसकी हार पक्की है। काफी तेश में कहता है "ठीक है, सबके विश्वास पर आप अपनी कुर्सी जमाइये ••• सुकुल बाबू अपनी मीटिंग जमाये ••• दत्ता बाबू अपना अखबार जमाये ••• बस हम ही अपनी कबर खोद लेते हैं।" 2 दा-साहब लखन सिंह के चेहरे की तरफ घूर-घूर कर देखते हैं और वह सकपका जाता है क्योंकि वह जानता है कि "अपनी योग्यता से नहीं दा-साहब की कृपा से ही उसे इस चुनाव के लिये टिकट मिला है।" 3

सुकुल बाबू के सीधे राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी दा-साहब का व्यक्तित्व काफी उलझा हुआ है उम्र से वे काफी सौम्य और गांधीवादी लगते हैं उनकी बातों से कोई यह नहीं कह सकता कि राजनीति के वे भी उतने ही घूटे हुये खिलाड़ी हैं जितने सुकुल बाबू। सरोहा की घटना पर "मसाल" वालों की निष्पक्ष टिप्पणी जो दा-साहब के विरोध में जाती थी पर लखन सिंह प्रतिबन्ध लगाने की बात गुस्से में कहता है, दा-साहब तुरन्त रोकते हुये कहते हैं : यह

---

1. मन्नू भण्डारी - "महाभोज" - पृ.-12.
2. मन्नू भण्डारी - "महाभोज", पृ.-20.
3. वही " पृ.-22.

तुम नहीं तुम्हारा स्वार्थ बोल रहा है । स्वार्थ को इतनी छूट देना ठीक नहीं कि वह विवेक को ही खा जाय । अखबारों को तो आजाद रहना ही चाहिए । वे ही तो हमारे कामों का हमारी बातों का असली दर्पण होते हैं । मेरा तो उसूल है कि दर्पण को धुंधला मत होने दो । हां, अपनी छवि देखने का साहस होना चाहिए आदमी में । बड़ी हिम्मत और बूता चाहिये उसके लिए । इससे जो कतराता है वह दूसरे को नहीं, अपने को ही छलता है ।" ।

इसके अलावा आवेश राजनीति का दुश्मन है "राजनीति में विवेक चाहिये" ऐसे नीति वाक्य बोलने वाले दा-साहब बड़े ही भले और जनता के हितैषी नेता के रूप में दिखाई देते हैं, किन्तु वास्तविकता कुछ और है । "अखबार की आजादी" और "अखबारों को राजनीति का दर्पण" मानने वाले दा-साहब "मसाल" को खरीद लेते हैं । यह अलग बात है कि इस खरीदारी को वे इतनी मक्कारी से सम्पन्न करते हैं कि किसी को हवा भी नहीं लगती । सुकुल बाबू की सरोहा मीटिंग को जायज ठहराने वाले दा-साहब जनता के पैसे के ही बूते पर सरोहा की जनता को खरीद लेने की पूरी कोशिश करते हैं । यह कोशिश घरेलू उद्योग योजना द्वारा सम्पन्न होती है । विचारों से गांधीवादी दा-साहब का यही असली चरित्र है । यह चरित्र दा-साहब का अपना अर्जित किया हुआ चरित्र नहीं बल्कि यह चरित्र उन्हें उस भ्रष्ट राजनीतिक परम्परा से विरासत में मिला है जिसका आजादी के बाद हिन्दुस्तान में तेजी से विकास हुआ ।

दा-साहब के चरित्र को देखकर बरबस ही "गोदान" के राय-साहब की याद आ जाती है । राय साहब भी खद्दर पहनते थे, दो बार जेल हो आये थे, शराब को हाथ नहीं लगाते थे, होरी जैसे भोले-भाले किसानों के सामने अपनी व्यथा भी बखानते रहते थे लेकिन यह राय साहब भी उसी

।• मन्नू भण्डारी - "महाभोज", पृ•-।9 .

सामन्ती व्यवस्था के सरमाएदार थे जो हिन्दुस्तान की जनता पर क्रूरता पूर्वक शासन करने वाली ब्रिटिश साम्राज्यवादीयों की सरकार की मशीन को तेल पिलाने का काम कर रही थी और जिसके बूते पर ही उनकी हुकुमत भी नीति परकता का लबादा ओढ़े व्यवहार में बड़ी घिनौनी हरकतें करते हैं और जनता को अपने कब्जे में रखने की हर कोशिश करते रहते हैं ।

राजनीतिक भ्रष्टाचार का एक और पहलू अपनी ही पार्टी में पद लोलुपता का वह संघर्ष है जो दा-साहब के मंत्रीमण्डल में चल रहा है । दा-साहब के मंत्रीमण्डल में शिक्षामंत्री त्रिलोचन सिंह रावत अपने लोगों में अपने चुनावी वादे पूरा न कर पाने की वजह से असन्तुष्ट हैं । पार्टी के अन्य असन्तुष्ट विधायकों को लेकर ऐन चुनावों के वक्त वे विद्रोह की योजना बनाते हैं । इनका विरोध इस बात को लेकर भी है कि सरोहा क्षेत्र से उनके आदमी को टिकट न देकर दा-साहब ने अपने आदमी लखन सिंह को टिकट दे दिया ।

बिसू की मौत को एक बढ़िया मौका पाकर विरोधियों का वर्ग यह तय करता है कि "समझ लीजिऐ कि बिसू की यह मौत दा-साहब के मंत्री मण्डल की मौत बन कर ही रहेगी, ! अब" मगर दा-साहब भी कमजोर खिलाड़ी नहीं हैं । विद्रोहियों को उन्होंने उन्ही में से कुछ को कुछ विभाग देकर सन्तुष्ट कर लिया, साथ ही कुछ पर गाज भी गिरी ।

राजनीतिक दलों की टकराहट का उपन्यास में एक और व्यक्ति शिकार होता । वह है, एस०पी० सक्सेना । बिसेसर की मौत की जाँच करने के लिये नियुक्त किया गया पुलिस अधिकारी एस०पी० सक्सेना जो गाँव वालों का बयान लेने के लिये नियुक्त किया जाता है बड़ी ही सहृदयता से लोगों के बयान लेता है और गाँव के थानेदार का किसी भी चाल को सफल नहीं होने

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ०-67.

देते हैं । नतीजे में सही बात सामने आती है । सही बात यह होती है कि बिसू ने आत्म हत्या नहीं की थी बल्कि उसकी हत्या की गई थी । चूँकि सरोहा के चुनावी माहौल में दोनों प्रमुख राजनैतिक दलों में असल विवाद हत्या और आत्महत्या को लेकर ही था । सत्तारूढ़ दल का मानना था कि बिसू ने आत्महत्या की है क्योंकि उसके शरीर पर किसी तरह के चोट के कोई निशान न थे । विरोधी दल का आग्रह इस बात पर था कि बिसू की हत्या की गई है और यह हत्या उसी गांव के कुछ प्रभावशाली लोगों द्वारा कराई गई है जिनका सम्बन्ध सत्तारूढ़ दल से है । यही कारण है कि सत्तारूढ़ दल इस पूरे मसले को आत्महत्या का रूप देने पर तुला हुआ है ।

दा-साहब भी सरोहा में अपने भाषण में इसी बात पर जोर देते हैं कि जब तक जांच की रिपोर्ट नहीं आ जाती तब तक इसे हत्या का मामला नहीं कहा जा सकता क्योंकि देखने में यह मामला आत्म हत्या का ही लगता है उसी सभा में दा-साहब इस हत्या के जांच की भी घोषणा करते हैं और एस०पी० सक्सेना, दा-साहब की इसी योजना को क्रियान्वित करने के लिये सरोहा भेजा जाता है ।

ए०पी० सक्सेना गवाहों से ईमानदारी पूर्वक बयान लेने के साथ ही साथ निष्कर्ष रूप से अपना निर्णय डी०आई०जी० को भेजता है । इस रिपोर्ट के मुताबिक बिसू की हत्या की पुष्टि होती है और साथ ही हत्यारों के नाम भी सामने आते हैं । सत्तारूढ़ दल न तो इस रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है और न ही खुले आम उसे गलत घोषित कर सकता है । पूरे मामले को सत्ता पक्ष के मुताबिक बदल देने का काम डी०आई०जी० सिन्हा को सौंपा जाता है, जिसके नतीजे में बिन्दा को जो बिसू का अभिन्न दोस्त और अन्याय के खिलाफ किये जाने वाले विरोधों का सहयोगी था, बिसू की मौत का अपराधी घोषित करते हुये गिरफ्तार कर लिया जाता है और एस०पी० सक्सेना को अपनी न्याय पूर्ण और निष्पक्ष रिपोर्ट देने के लिये ईनाम में सस्पेन्सन आर्डर

दिया जाता है । बिना किसी आधार के बिना किसी बयान के और असली रिपोर्ट से बिलकुल अलग "डी०आई०जी० के पास पूरी रिपोर्ट तैयार है" अकाट्य तर्कों से लैस ठोस प्रमाणों से पुष्ट ।[1] कहना न होगा कि यह रिपोर्ट सत्तारूढ़ दल के इशारे पर बनाई गई, सच्चाई से अलग एक झूठी रिपोर्ट थी जिसने बिसू के हत्यारे को सज़ा देने का दावा करते हुये एक और "बिसू" (बिन्दा) को लील लिया ।

इस तरह देखा जा सकता है कि अपने समय के दो प्रमुख राजनैतिक दलों और उनकी वास्तविक भूमिका का सही-सही मूल्यांकन मन्नू भण्डारी ने अपने इस उपन्यास में किया है यह बात उस समय के राजनैतिक परिदृश्य को देखने पर और भी स्पष्ट हो जाती है । "महाभोज" की रचना के समय भारतीय राजनीति में गतिशील दो ही राजनीतिक दल थे । एक थी काफी समय से सत्ता में रह चुकी और उस समय हारी हुई पार्टी कांग्रेस पार्टी जिसकी नेता थीं स्वर्गीया श्रीमती गांधी, दूसरी पार्टी थी जनता पार्टी जो इमरजेन्सी के दमन के खिलाफ सभी विपक्षी दलों के संयुक्त गठबन्धन से बनी थी । इस परिप्रेक्ष्य में "महाभोज" की घटनाओं को देखें तो सब कुछ साफ हो जाता है । सरोहा की घटना बेलछीकाण्ड है सरोहा की सुकुल बाबू की मीटिंग बेलछी की वह मीटिंग मानी जा सकती है जिसमें बेलछीकाण्ड का जायजा लेने के लिये स्वर्गीया श्रीमती गांधी हाथी पर सवार होकर गई थीं । इसी तरह के और भी तमाम बातें उस समय के राजनैतिक परिदृश्य के अपने सही साहित्यक रूप में "महाभोज" में उभरने का संकेत देती हैं ।

---

1. मन्नू भण्डारी - "महाभोज", पृ०-180.

§ग§ राजनैतिक नेताओं का चरित्र

"महाभोज" उपन्यास वर्तमान राजनीतिक जीवन का एक जीवन्त दस्तावेज है । यह दस्तावेज जनता के राजनैतिक शोषण का खुलासा करने के साथ ही साथ नेताओं के असली चरित्र का भंडा फोड भी करता है । मौजूदा राजनैतिक भ्रष्टाचार की बुनियाद में जो असल चीज है, उसे काफी कुछ उन नेताओं के चरित्र से जोड़ कर देखा जा सकता है जो भारतीय प्रजातन्त्र के सूत्र-धार हैं । "महाभोज" में वर्णित राजनैतिक भ्रष्टाचार को सही तरीके से समझने के लिये इसमें आये नेताओं के चरित्र को समझना अत्यन्त जरूरी है ।

उपन्यास के पूरे राजनैतिक घटना क्रम के दो राजनैतिक सूत्रधार हैं - दा-साहब और सुकुल बाबू । दा-साहब प्रान्त के वर्तमान मुख्य मंत्री हैं जबकि सुकुल बाबू निवर्तमान । इन दो राजनैतिक सूबेदारों के अलावा कुछ और भी नेताओं का जिक्र आता है । इनमें हैं - शिक्षा मंत्री त्रिलोचन सिंह रावत, स्वास्थ्य मंत्री राव तथा विकास मंत्री चौधरी इन सब के अलावा एक और नेता का जिक्र आता है, वे हैं पार्टी अध्यक्ष सदा शिव अत्रे जिन्हें लोग अप्पा साहब कहकर संबोधित करते हैं । इन सारे राजनैतिक चरित्रों की आपसी टकराहट और फायदे पर टिके गठ बन्धन के साथ-साथ उपन्यास का विकास होता है । कहना न होगा कि यह विकास हिन्दुस्तानी प्रजातन्त्र का भी विकास है इन सारे चरित्रों की असलियत आपतकालीन दौर के सिलसिले में खोजने की कोशिश की गई है ।

§।§ दा-साहब: दा-साहब ताजे चूने हुये मुख्यमंत्री हैं, जिनका उपरी आचरण बड़ा ही संयम और आदर्शवादी है । उपन्यास में जगह-जगह दा-साहब नीति परक बातें कहते चलते हैं । सरोहा निर्वाचन क्षेत्र से दा-साहब की पार्टी का प्रत्याशी लखन सरोहा की घटना पर दा-साहब से काफी उत्तेजित होकर उनसे कुछ करने के लिये कहता है और इस बात पर खीज व्यक्त करता है कि विरोधी दल के

नेता इस घटना को भुनाते हुये हरिजनों के सारे वोट काट देंगे । दा-साहब जरा सा भी उत्तेजित नहीं होते हैं । इतना ही नहीं इस आवेश के लिये लखन की उम्र को दोषी मानते हुये समझाते हैं । "आवेश राजनीति का दुश्मन है । " राजनीति में विवेक चाहिए । विवेक और धीरज । प्रवचनीय मुद्रा में दा-साहब ने जीवन के अनुभवों से निचुड़ा हुआ वाक्य उछाला । फिर कुछ क्षण रुककर हौसला बंधाते हुए बोले - "आयेगा पद पर बैठोगे तो पद की जिम्मेदारी स्वयं सब सिखा देगी ।" [1]

इतनी ही नहीं अखबार पर भी लखन के गुस्से को दा-साहब नाजायज मानते हैं । समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता के वे बेहद कायल दिखाई देते हैं । लखन को डांटते हुये दा-साहब ने कहा - "यह तुम नहीं तुम्हारा स्वार्थ बोल रहा है । स्वार्थ को इतनी छूट देना ठीक नहीं कि वह विवेक को ही खा जाय । अखबारों को तो आजाद रहना ही चाहिए । वे ही तो हमारे कामों का, हमारी बातों का असली दर्पण होते हैं । मेरा तो उसूल है कि दर्पण को धुंधला मत होने दो हाँ अपनी छवि देखने का साहस होना चाहिए आदमी में । बड़ी हिम्मत और बूता चाहिए उसके लिए । इससे जो कतराता है वह दूसरे को नहीं अपने को ही छलता है ।"[2]

इस तरह दा-साहब बड़ी ही कर्तव्य परायणता उदारता और जन-हितकारिता का तामझाम अपनी बातों से खड़ा करते हैं । लखन को डाँटने और लम्बा चौड़ा उपदेश देने के बाद अपने असली रूप में दा-साहब प्रकट होते हैं उन्होंने सोच लिया कि विपक्ष की चालों को ध्वंस करने के लिये उन्हें कौन सा हथियार इस्तेमाल करना है । चलते-चलते लखन से उन्होंने कहा "अच्छा तो तुम पांडे को बोल दो, मीटिंग की तैयारी करवायें । होशियार आदमी है, स्थिति संभालना जानता है - और हाँ जाओ तो ज़रा "मशाल" के दफ्तर

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ.-18.
2. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ.-19.

होते जाना । दत्ता बाबू ही नाम है न सम्पादक का ? कोई तीन-चार महीने पहले इंटरव्यू लेने के लिए समय मांगा था । - पर कहां था उन दिनों समय ! कहना अब समय लेकर मिल किसी दिन मुझसे ।[1]

और इतना कहकर दा साहब जनता से मिले हुये जबड़े को जनता पर ही गड़ा देते हैं । नतीजे में "मशाल" समाचार पत्र के सम्पादक दत्ता साहब बकरी की तरह मिमियाते हुये दा-साहब के सामने उपस्थित होते हैं । अपनी आदत के मुताबिक दा साहब, दत्ता के सामने समाचार-पत्रों के दायित्वों का वाचन करते हैं और उन्हें याद दिलाते हैं कि उनके कर्तव्य क्या हैं । दत्ता साहब दुम हिलाते हुये सब कुछ सुनते और स्वीकार करते जाते हैं । नतीजे में आशीर्वाद स्वरूप उन्हें कागज का डबल कोटा देने का आश्वासन मिलता है और "मशाल" के सत्तारूढ़ दल द्वारा उसके पक्ष में लिखने और कहने की खरीददारी सम्पन्न होती है ।

दा-साहब अपने राजनैतिक तिकड़म का दूसरा नमूना सरोहा गांव में पेश करते हैं । बड़े ही नाटकीय ढंग से गांव वालों को लुभाने वाली "घरेलू उद्योग योजना" का पांसा फेंकते हैं जिसका भरपूर असर पड़ता है । इतना ही नहीं स्वयं भी सरोहा में बिसू की मौत का मातम मनाने के लिये अपने घड़ियाली आंसुओं के साथ उपस्थित होते हैं, पहले पर दहला यह कि बिसू के बाप हीरा को उसके घर से लाकर सारे गांव वालों के सामने उसी से घरेलू उद्योग योजना का उद्घाटन भी करवाते हैं । यह तुक्का ग्रामीण जनता को बखूबी प्रभावित करता है ।

दा-साहब तीसरा हाथ तब मारते हैं जब उनके ही मंत्रि मण्डल में सुलग रही आग ऐन चुनाव के मौके पर सामने आने लगती है । दा साहब बड़ी ही कुशलता के साथ विद्रोही विधायकों से निपटते हैं । और कुछ को

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ॰-27.

मनोवांछित विभाग देते हुये कुछ से त्याग पत्र लेते हुए बड़े ही कूटनीतिक तरीके से निपटते हैं । यहाँ भी दा-साहब का कुछ नहीं बिगड़ता है । बिगड़ता है उनका जो दा-साहब की खिलाफत के लिये जिम्मेदार हैं ।

(iii) सुकुल बाबू : उपन्यास के दूसरे प्रमुख पात्र सुकुल बाबू जो कि दस साल तक प्रान्त के मुख्य मंत्री रहने के बाद अचानक पिछले चुनाव में मुँह की खा गये थे अपने हारने के बाद सुकुल बाबू को राजनीति के स्तर पर मूल्यांकन की जरूरत पड़ी और उन्हें महसूस हुआ कि राजनीति का पतन हो गया है । हालांकि पिछली पराजय के बाद उन्होंने तय किया था कि अब चुनावी राजनीति से सन्यास ले लेंगे । लेकिन उनका यह संकल्प उसी क्षण धूल धूसरित हो गया जबकि सरोहा के चुनाव की गन्ध उनकी नाक में घुसी । सुकुल बाबू को अपनी भड़ास निकालने का यह सु-अवसर लगा और नतीजे में सुकुल बाबू अपनी पार्टी की तरफ से सरोहा उप-चुनाव के मैदान में उतरे । सरोहा की घटना को उन्होंने अपने प्रमुख हथियार के रूप में इस्तेमाल किया । सुकुल बाबू काफी उत्तेजक भाषण देने की क्षमता रखते हैं । यहाँ तक की उनका विरोधी लखन भी स्वीकार करता है, "सुकुल जी के भाषण का करिश्मा । आग उगलते हैं, आग ! गांव कैसे ही सन्नाया बैठा है । एक ही भाषण में बहाकर ले जायेंगे सारे गांव को अपने साथ ।"

सरोहा गांव के बिसू की मौत के हितैषी बनने वाले सुकुल बाबू के ही शासन काल में इसी बिसू को बिना किसी अपराध के पुलिस बन्दी बनाकर ले गई थी और बिना कोई मुकदमा चलाये उसे जेल में बन्द कर दिया था । चार साल बाद जब वह जेल से छूट कर आया तो उसका शरीर जख्मों से भरा था और यह जाहिर था कि उस पर अमानुषिक अत्याचार किये गये थे । यह वही बिसू था जिसकी सुकुल बाबू के शासन काल में हुई यंत्रणा पर कोई राय जाहिर करने का वक्त सुकुल बाबू के पास न था और आज वक्त सुकुल बाबू उसकी मौत को लेकर सर्वाधिक चिन्तित और दुःखी दिखाई देने

लगे थे । साफ है कि बिसू की मौत उन्हें चुनाव में विजय प्रदान करने के लिये वरदान प्रतीत हुई ।

सरोहा के अपने भाषण में बड़े ही नाटकीय ढंग से सुकुल बाबू इस बात का खुलासा करते हैं कि वे वोट मांगने नहीं आये हैं क्योंकि पिछली पराजय के बाद उनके लिये हार-जीत का सवाल अर्थहीन हो गया है । किसी के इस व्यंग्य पर किसने आपको खड़ा होने को कहा था, बड़े ही मजे हुये ढंग से सुकुल बाबू जवाब देते हैं -[1] खड़ा हुआ हूं आप लोगों के हक की लड़ाई के लिए । बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए । बात केवल बिसू की मौत का नहीं है ··· यह आप सब लोगों के जिन्दा रहने का सवाल है ··· अपने पूरे हक के साथ जिन्दा रहने का । यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं - आपके जिन्दा रहने के हक की मौत है । आपका यह हक जरा से स्वार्थ के लिए गांव के धनी किसानों के हाथ बेच दिया गया है - और यही हक मुझे आपको वापस दिलवाना है । जुलुम ने आप लोगों के होसले तोड़ दिये हैं, इसलिए मैं लड़ूंगा आपकी यह लड़ाई ।" [2]

त्रिलोचन सिंह रावत "लोचन भैया" जो इस समय दा साहब के मंत्रि मण्डल में शिक्षा मंत्री हैं, तब जबकि सुकुल बाबू मुख्य मंत्री थे तो लोचन भैया उन्हीं की पार्टी से जुड़े थे और विधान सभा के सदस्य भी थे । आपात-काल की घोषणा होने पर लोचन भैया ने जनता की आजादी की बात करते हुये प्रजातन्त्र का समर्थन और आपातकाल का विरोध किया । इस विरोध की कीमत भी उन्हें चुकानी पड़ी लेकिन लोचन भैया तकदीर के तेज निकले । आपातकाल के बाद विरोधी दलों के संयुक्त मोर्चों से लोचन भैया चुनाव लड़े

1· मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ·-19.
2· मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ·-36.

और भारी बहुमत से जीत कर अपनी लोक प्रियता के बूते पर दा साहब के मंत्रिमण्डल में शिक्षा मंत्री बने ।

अपनी विद्रोही प्रकृति के कारण लोचन भैया सरोहा से लखन जैसे कमजोर आदमी को टिकट दिये जाने पर सुलग उठे और कह बैठे कि "आप लोग इस बात को तो शायद बिलकुल भूल ही गये हैं कि दा-साहब के व्यक्तित्व से परे भी पार्टी का कोई अस्तित्व है ।" [1] विरोध का नतीजा यह होता है कि लोचन भैया मंत्रिमण्डल से निकाल दिए जाते हैं और नैतिकता के चलते वे पार्टी से भी त्याग पत्र दे देते हैं किन्तु फिर भी उनका मन शान्त नहीं रह पाता है और हजारों सवाल उनके दिमाग में एक साथ उठते हैं । "आज तो परिवर्तन का नाम ले लेने वाले की आवाज घोट दी जाती है - उसे काट कर फेंक दिया जाता है, एक तरफ पिके गिरे चुने आदमियों के घुटे गले और सँधी आवाजों से क्रान्ति का स्वर फूट सकेगा अब कभी ?

जाहीर है कि लोचन भैया जैसे नेताओं का चरित्र अपनी ईमानदारी और जनता के प्रतिनिष्ठा का परिचायक है लेकिन ऐसे निष्ठावान राजनीतिज्ञों का हश्र क्या होता है, यह "महाभोज" उपन्यास से भली भाँति मालूम हो जाता है । अंत में लोचन को असफलता का सामना करना पड़ता है लेकिन पूरे उपन्यास में अकेले ईमानदार राजनैतिक चरित्र के रूप में उनके महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता । दल-बदल करना भी उनके लिये जनता के प्रतिनिष्ठावान बने रहने के लिये अनिवार्य हो जाता है और इसीलिये उनके दल-बदल की कहीं से भी निंदा नहीं की जा सकता है ।

पार्टी अध्यक्ष अप्पा साहब अपने अध्यक्षीय दायित्वों के प्रति पूरी तरह से सचेत हैं लेकिन उनका भी सारा आदर्शवाद अपनी पार्टी के हक में

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ.-60

ज्यादा है, जनता के हक में कम । दा-साहब के दो अन्य विरोधी मंत्री राव और चौधरी पदलोलुपता के शिकार राज-नेताओं के अन्कृष्ट उदाहरण हैं । जो अपने लाभ की आंधी में जनता के सारे लाभ हानि को तिलांजलि दे देते हैं ।

इस तरह देखा जा सकता है कि "महाभोज" में आये नेताओं का चरित्र वर्तमान राजनीति के लगभग सभी पहलुओं को उजागर करता चलता है, साथ ही उन कमजोर पहलुओं पर भी उंगली रखता है जिनकी तरफ आम तौर से जनता का ध्यान नहीं जाता है । कृष्ण कुमार बिस्सा ने लिखा है कि "इस कृति को पढ़ने के बाद कहा जा सकता है कि लेखिका के समक्ष आडम्बर-युक्त राजनीतिज्ञों के प्रपंच उनकी स्वार्थ परता और आदर्श हीनता, अमानवीयता और निर्ममता रही और उसी से अभिप्रेत होकर उसका नग्न चित्रण लेखिका ने अपनी इस कृति में किया है ।"[1]

---

1. कृष्ण कुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, पृ॰-35.

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

महाभोज में व्यंजित समाज का स्वरूप

(क) सामाजिक स्वरूप

"महाभोज" न केवल हिन्दुस्तान के राजनैतिक जीवन में फैले भ्रष्टाचार का दस्तावेज है, बल्कि यह हिन्दुस्तानी सामाजिक परिस्थितियों का भी उतना ही मजबूत दस्तावेज है। दरअसल मन्नू भण्डारी राजनैतिक जीवन का चित्रण करते समय सामाजिक जीवन की उपेक्षा कर भी नहीं सकती थी। क्योंकि राजनीति व समाज को काट कर या अलग-अलग करके किसी रचना को आकार दे पाना संभव भी नहीं है। यह बात मौजूदा लेखन के बारे में विशेषत: कथा साहित्य के उस हिस्से के बारे में कहीं ज्यादा सच है जो सामाजिक, राजनैतिक रूप से प्रतिबद्ध है।

"महाभोज" में वर्णित समाज के स्वरूप का सीधा सम्बन्ध आज के समाज के उस ग्रास पहलू से है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से आजाद होने के बाद जनतंत्र को बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। यह सही है कि "महाभोज" में आये प्रसंगों का सम्बन्ध ज्यादातर राजनैतिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि राजनीति को समाज से काट कर देखा जाय। समाज के विभिन्न पक्षों में आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विभिन्न पक्षों को गिना जा सकता है। आजादी के पहले के साहित्य में, विशेषकर उस साहित्य में जिसमें धर्म, नीति, उपदेश सरीखी चीजें ज्यादा मिला करती थीं - का समाज पिछड़ा और अंध-विश्वासों पर आधारित समाज था। उस समाज में धार्मिक आग्रह कुछ ज्यादा ही थे। यही वजह है कि उस समय के साहित्य का विश्लेषण धार्मिक प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता रहा है। उदाहरण के रूप में भक्तिकालीन साहित्य को देखा

देखा जा सकता है । जिसे राम-कृष्ण जैसे अलौकिक पुरुषों और द्वैत, अद्वैत, विशुद्धाद्वैत जैसे मतवादों की कसौटी पर परखा जाता रहा है । लेकिन आजादी के बाद के दौर में ऐसे आलोचक उभरे जिन्होंने समय और समाज के अनुसार मूल्यांकन की कसौटियां बदलीं और घोषित किया कि "भक्ति आन्दोलन जनसंस्कृति का अखिल भारतीय आन्दोलन था ।" ।

विषय से परे इन चीजों पर विचार करने का मेरा आशय केवल यह स्पष्ट करना है कि समाज की प्रधान प्रवृत्ति साहित्य की भी प्रधान प्रवृत्ति हुआ करती है । लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि साहित्य समाज की "फोटोस्टेट कापी" हुआ करता है बल्कि इसका मतलब यह है कि समाज की प्रधान हलचल से साहित्य अछूता रहे, ऐसा होना सामान्यत: संभव नहीं है । आजादी के बाद का दौर मुख्य रूप से हिन्दुस्तानी समाज में एक नये परिवर्तन का दौर है । यह परिवर्तन अपने खुद के बनाये राजनैतिक ढांचे के विकास के चलते हुये सामाजिक परिवर्तन से जुडा है । इसलिए यह मान लेने में कोई हर्ज नहीं है कि "महाभोज" में वर्णित राजनैतिक स्वरूप, समाज के स्वरूप के वर्णन का ही एक हिस्सा है ।

"महाभोज" में वर्तमान समाज को उसकी समग्रता में देखने की कोशिश की गई है तथा उसके समस्त पहलुओं की व्यापक स्तर पर छानबीन भी की गई है । इसमें एक तरफ गांवों की जिन्दगी अपने पूरे तीखेपन के साथ उभरती है तो दूसरी तरफ शहरी जिन्दगी का अलगाव भरा रूखापन । कहा जा सकता है कि शहर और गांव का यह विलक्षण संयोजन ही उपन्यास को शक्ति और परिपक्वता दे सका है ।

।• मैनेजर पाण्डे -पृ•-

"महाभोज" में अगर जातीय टकराव है तो दूसरी तरफ गांवों में राजनैतिक संरक्षण में पनप रही क्षेत्रीय गुंडागर्दी भी अपने यथार्थ रूप में मौजूद है । समाज में फैली कुरीतियाँ और विसंगतियां भी लेखिका की दृष्टि में प्रधान रही हैं । इतना ही नहीं इस उपन्यास को पढ़ने के बाद एक बार तो ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द का होरी अभी भी जिन्दा है और उसी तरह शोषित है जैसे की प्रेमचन्द के ज़माने में था । अपने विद्रोही तेवर के साथ गोबर से भी इस उपन्यास में मुलाकात होती है । फर्क केवल इतना है कि जहाँ "गोदान" में होरी की मौत होती वहीं "महाभोज" में गोबर के दूसरे रूप की । "गोबर" का यह दूसरा रूप "महाभोज" में "बिसू" है और होरी यहाँ हीरा है । एक अन्तर और है होरी की मौत सामन्ती दाँचे में पिस कर होती है जबकि बिसू की मौत प्रजातांत्रिक दाँचे में पिसकर । जाहिर है कि फर्क आजादी के पहले के भारत और आजादी के बाद के भारत में है । समाज व्यवस्था का शोषक रूप अभी बदस्तूर कायम है । सिर्फ इतना ही कुछ बदला है कि होरी की जगह बिसू व्यवस्था की वेदी पर बलिदान हो रहा है ।

1. वर्गीय संघर्ष - "महाभोज" में शोषित वर्ग का चित्रण काफी गंभीरता से से किया गया है जो समाज का एक प्रमुख हिस्सा है । "महाभोज" का प्रधान संघर्ष पीड़ितों का अपने हक के लिये किया गया संघर्ष है जिसकी अगुआई बिसू नाम का एक हरिजन नव-युवक करता है बिसू की मौत पूरे राजनैतिक खेल के केन्द्र में रहती है । और पूरा उपन्यास इसी मुद्दे को लेकर हुये दो राजनैतिक दलों के आपसी टकराव के साथ विकसित होता है । बिसू का कसूर सिर्फ इतना है कि उसने गांवों में हुये आगजनी काण्ड के खिलाफ सचाई बयान करने का संकल्प किया था । अगर बिसू जीवित रहता तो निश्चित रूप से इस काण्ड की असलियत सामने आती और नतीजे में गांव के शक्तिशाली तबके के वे लोग फंसते जिन्हें मजबूत राजनैतिक संरक्षण मिला हुआ है । अतः प्रजातन्त्र की उसी महान् परम्परा का निर्वाह करते हुये जिसके मुताबिक कुर्सी के राह में आने वाले किसी भी व्यक्ति को हटा देना ही धर्म है - बिसू की हत्या

करवा दी जाती है ।

बिसू की मौत का प्रकरण हमारी समाज व्यवस्था के उस रूप को सामने लाता है जिससे यह साफ हो जाता है कि आज भी समाज का निचला वर्ग उसी तरह उपेक्षित, पीड़ित और पद दलित है जैसे सामन्ती समाज में अथवा ब्रिटिश हुकूमत के दौरान था । "महाभोज" का यह प्रकरण गांधी जी के अछूतोद्धार की भी खिल्ली उड़ाता है । गांधीजी ने आजाद भारत के जिस स्वरूप की कल्पना की थी वह स्वरूप एक ऐसी राज्य व्यवस्था का था जिसमें न कोई छोटा होगा न कोई बड़ा, न कोई अमीर होगा न कोई गरीब, कोई अछूत, पददलित या उपेक्षित न होगा । यही वजह थी कि उन्होंने शूद्रों को 'हरिजन' नाम दिया । लेकिन गांधीजी के इन हरिजनों की जिन्दगी कितनी बदली है, कितनी सुखी है और कितनी स्वतन्त्र है, यह "महाभोज" अच्छी तरह से बताता है ।

समाज व्यवस्था को चलाने वाले राजनैतिक सूबेदार केवल मौके का फायदा उठाने की कला में निपुण हैं । उन्हें इससे कोई मतलब नहीं है कि जनता कहाँ तक सुखी है अथवा कहाँ तक दुखी है । उनके लिये "सच पूछा जाये तो बड़ा न आदमी होता है, न घटना । यह तो बस मौके-मौके की बात होती है ।" [1] इसी स्वार्थ परता के चलते बिसेसर सरीखे लोग अपने हक की लड़ाई में मौत को गले लगाते हैं और यह मौत एक बार पूरी समाज व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है ।

लेकिन यह मतलब कतई नहीं है कि सच्चाई और ईमानदारी की इस लड़ाई में उनकी हार हुई है । लेखिका का ऐसा मन्तव्य भी नहीं है । बल्कि इनकी हार भ्रष्टाचार और अन्याय के उस स्वरूप को सामने लाती है

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ॰-12.

जिससे प्रेरित होकर और शक्ति पाकर आने वाले समय में हजारों लाखों बिसेसर, सक्सेना और त्रिलोचन सिंह रावत अपने हक की लड़ाई लड़ेंगे। उपन्यास में भी इन तमाम घटनाओं के बाद अन्याय के और जुल्म के खिलाफ जंग जारी रखती है। आगजनी काण्ड के प्रमाण और बिसू की मौत के प्रमाण सहित एस०पी० सक्सेना उस लड़ाई को जारी रखता है जिसकी शुरुआत बिसेसर ने की थी।लोचन भैया भी अन्त में महसूस करते हैं "आज तो परिवर्तन का नाम लेने वाले की आवाज घोंट दी जाती है - उसे काटकर फेंक दिया जाता है। एक तरफ फिके गिने-चुने आदमियों के घुटे गले और रुंधी आवाज़ों से क्रांति का स्वर फूट सकेगा अब कभी ?" इतना ही नहीं मोहभंग के इस दौर में एक और सवाल उनके मस्तिष्क में आता है, "एकला चलो रे" गीत कितने क़दम चला पायेगा किसी को भी ?"[1]

लोचन भैया का यह चिन्तन और उससे उठे हुये यह सवाल हिन्दुस्तानी समाज के सामूहिक सवाल हैं जिनके समाधान की जरुरत भी तेजी से महसूस की जा रही है। बहुत संभव है कि आम जनता व्यापक स्तर पर इन सवालों से जूझ कर इनकी असलियत को समझे और आने वाले काल में उस लड़ाई की ताकत बने जो बिसेसर द्वारा शुरु की गई है और जिसे बिसेसर की मौत के बाद एस०पी० सक्सेना जारी रखे हुये हैं तथा जिससे जुड़े सवालों पर भ्रष्ट राजनीति का अकेला विभीषण त्रिलोचन सिंह रावत गंभीरता से सोच रहा है।

2. जातीय व क्षेत्रीय द्वन्द्व - "महाभोज" उपन्यास में जातीय समीकरणों और क्षेत्रीय संघर्षों को भी उभारा गया है। भारतीय समाज वर्ण-व्यवस्था पर आधारित समाज रहा है। वर्ण-व्यवस्था के मुताबिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र - इन चार वर्णों में भारतीय समाज विभक्त रहा है। इस विभाजन के

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ०-182.

अनुसार सभी वर्णों के अपने-अपने स्थान निर्धारित किये गये थे और इसी के अनुरूप उनके कार्य भी निश्चित किये गये थे। ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ माना गया। क्षत्रिय को राज्य-व्यवस्था चलाने वाला और बाहुबल युक्त माना गया, वैश्यों को व्यवसाय करने वाला माना गया, तो चौथे पद क्रम पर स्थित शूद्रों को निम्न और इन तीन वर्णों की सेवा करने वाला कहा गया। धर्म शास्त्रों में यह व्यवस्था महाभारत के "पुरुषसूक्त" में उल्लिखित है।

महाभारत काल की यह व्यवस्था सामन्त प्रथा के दौर में मान्य तो थी ही, इसका विकृत रूप भी अपने पूरे भद्देपन के साथ इस दौर में मौजूद रहा। राजनैतिक सूत्रधार बनने की होड़ में ब्राह्मणों और क्षत्रियों में उठा-पटक होती रही। लेकिन इस उठा-पटक के बीच वैश्य-वर्ग अपना कार्य करता रहा। शूद्र भी अपने सेवक भाव के साथ बिना किसी विरोध व विद्रोह के "कोउ नृप होई हमें का हानि" की भावना से शोषित और पीड़ित रहा। इतिहास साक्षी है कि इनकी स्थिति हर युग व हर काल में शोषण की एक वेदना भरी क्रूरता की कथा है। इतिहास के इस काले अध्याय को साफ करने के लिये हिन्दुस्तान में नवजागरण की एक व्यापक लहर फैली। इस लहर के प्रथम संवाहक थे - राजा राम मोहन राय। और भी तमाम व्यक्ति और संस्थाएं 19वीं शती की शुरुआत में सामने आईं, जिन्होंने सदियों से चली आ रही भेद पर आधारित समाज-व्यवस्था को चुनौती दी और लोगों को समझाया कि यह सब कुछ हमारे देश और हमारे समाज के हितों के प्रतिकूल होने के साथ ही साथ मानवता के भी विरोध में है।

नवजागरण का यह दौर हिन्दुस्तान के स्वाधीनता-आन्दोलन के शुरुआत का भी दौर है। लेकिन यह बात ध्यान में रखना जरूरी है कि विदेशी गुलामी के खिलाफ आवाज उठाने के पहले हिन्दुस्तान में देशी गुलामी के खिलाफ आवाज उठाई गई थी। ऐसा शायद इसीलिये किया गया था कि

हिन्दुस्तान के प्रबुद्ध और प्रगतिशील चिंतकों ने बहुत पहले इस बात को जान लिया था कि अपनों के अत्याचार से संघर्ष करने के बाद ही हम गैरों के अत्याचार से कुशलता पूर्वक संघर्ष कर सकते हैं। राजा राम मोहन राय, महादेव गोविन्द रानाडे, दयानन्द सरस्वती, ऐनी बेसेंट, केशवचन्द्र सेन सरीखे लोग जो नव जागरण की चेतना का प्रसार करने वालों में प्रमुख थे, का मूल लक्ष्य समाज को सुधारना ही था। यह समाज सुधार प्रत्येक क्षेत्र में लागू होना था। चाहे वह विधवा विवाह हो, चाहे सती प्रथा हो, चाहे छुआ छूत हो, चाहे हो जात-पाँत का भेद-भाव इन सब के खिलाफ उनका संघर्ष था।

स्वाधीनता आन्दोलन ने इस संघर्ष को और भी गहराई दी जिसके परिणाम में तमाम बुराइयां काफी हद तक दूर भी हुई। लेकिन इनका पूर्ण रूप से समापन हो गया हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कुछ समस्याएं निश्चित रूप से समाप्त हुईं जिनमें सती प्रथा और बाल-विवाह का नाम लिया जा सकता है। लेकिन कुछ समस्याऐं विस्तार भी प्राप्त करती गईं। जाति-पाँति और छुआ-छूत के बन्धन एक तरफ घटे तो दूसरी ओर इनका विस्तार भी हुआ। गांधी जी के राम राज्य की कल्पना जिसमें -"जाति-पाति पुछे न कोई, हरि को भजे सो हरिका होई" कि प्रबल इच्छा थी, कहाँ तक साकार हो सकी ; इस पर सोचने समझने की जरूरत गंभीरता से महसूस की जाती रही है। इसके साथ ही साथ एक सवाल यह भी उभरता रहा है कि आजादी के पहले का भारत जिसमें स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान लगातार हिन्दुस्तानी जनता की मजबूत होती जाती एकता दिखाई पड़ती है, वह कौन सी वजह है जिसने आजादी के बाद इसे अलगाव की तरफ मोड़ा। कहा जा सकता है कि विदेशी गुलामी से मुक्त होने के बाद हमारे सामने अपना समाज और उसकी व्यवस्था ही शेष थी जिसमें बाहरी हस्तक्षेप पर हमने विजय पा ली थी लेकिन कहीं न कहीं से कोई ऐसा खोट हमारी इसी समाज व्यवस्था में शेष रह गया

था जिसने आजादी के बाद की समस्याओं को जन्म दिया और देश के विकास में अवरोध पैदा किया ।

"महाभोज" में मन्नू भण्डारी का सवाल भी यही है और इसी के जवाब की तलाश भी "महाभोज" में की गई है । सामाजिक व्यवस्था में उपजे दोषों में एक प्रधान दोष यह रहा कि वर्ण व्यवस्था के स्थूल भेद के स्थान पर आधुनिक भारत में जातीय व्यवस्था के सूक्ष्म भेद उभरे ।" सैकड़ों नई जातियों का जन्म हुआ और उसी के अनुसार जातीय समीकरण भी बने । गुलाम प्रथा का अन्त हुआ, सामन्ती प्रथा का अन्त हुआ, ब्रिटिश साम्राज्य-वाद का अन्त हुआ लेकिन एक ही चीज ऐसी रही जिसका अन्त तो नहीं ही हुआ बल्कि विस्तार हुआ । हिन्दुस्तानी समाज की यह कमजोर नस रही - जाति प्रथा । सरोहा गांव भी जाति प्रथा से उपजे भयंकर परिणामों का दस्तावेज है जिसमें न तो दो धर्मों की टकराहट है, न दो राष्ट्रों की, बल्कि यहाँ टकराहट है गांव के ठाकुर जोरावर सिंह और गांव के हरिजन बिसेसर की । जोरावर सिंह सामन्त नहीं है और बिसेसर भी वह शूद्र नहीं है जिससे चौसठ फीट की दूरी पर दक्षिण भारत के ब्राह्मण चला करते थे और जिनकी छाया से भी कलुषित हो जाने का भय हुआ करता था ।

नंदिनी मिश्र के इस कथन को देखने की जरुरत है - "मन्नू भण्डारी का उपन्यास "महाभोज एक सौ तिरासी पृष्ठों का है और इसकी कथा भारत के सरोहा नामक एक ऐसे गांव से सम्बन्धित है जहाँ कि देश के अधिकांश गांवों के समान सामंती सभ्यता का ही साम्राज्य है तथा जमींदार निष्ठुरतापूर्वक किसानों एवं मजदूरों का शोषण करते हैं । शासक वर्ग और पुलिस आदि भी जमींदारों का ही साथ देते हैं ।" ।

।• मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य - नंदिनी मिश्र, पृ•-136.

दरअसल नंदिनी जी ने बड़े ही सतही ढंग से "महाभोज" की कथा का सारांश प्रस्तुत किया है । वाम पंथी शब्दावली के नशे में इन्हें यह याद ही नहीं रहा कि "महाभोज" की कथा "सामंती सभ्यता की कथा नहीं है । इस उपन्यास की कथा आजादी के बाद के भारत की कथा है और शायद उन्हें यह मालूम हो कि इस दौर में सामन्ती प्रथा समाप्त हो चुकी थी । एक और नई बात नंदिनी जी से मालुम हुई की "महाभोज" में जमींदार भी है । यह जमींदार उपन्यास में कहां है यह भी उन्हें बता देना चाहिये था । आक्रामक शब्दावली का इस्तेमाल करने के जोश में जबरदस्ती स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में जमींदारी घुसेड़ देना उतना ही हास्यास्पद है जितना परमाणु बम के सिलसिले में धनुष-बाण का जिक्र करना ।

वस्तुत: "महाभोज" में जो टकराहट देखने को मिलती है, यह टकराहट दो जातियों की टकराहट है । ये जातियां हैं - ठाकुर और हरिजन । इसे उच्चवर्ण और निम्न वर्ण की भी टकराहट कहा जा सकता है लेकिन "महाभोज" की टकराहट सीधे-सीधे ठाकुरों और हरिजनों की टकराहट है । यहां मार्क्सवादी शब्दावली का शब्ददोष दिखाई पड़ सकता है लेकिन वास्तविकता यही है । यह बड़ी ही आम बात आज भी है कि जहां कहीं सवर्णों के हितों पर ठोकर लगती है, उनका पुराना शोषक रूप सामने आ जाता है । "महाभोज" में भी यही होता है । गांव के ठाकुरों द्वारा हरिजनों के घरों में आग लगा दी जाती है । यह आग उनके उसी पुराने तेवर को सामने लाती है जो अब धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है और इधर बिसेसर के रूप में एक नई ताकत भी उभर रही है जो आगजनी की इस घटना के खिलाफ संगठित विरोध करने को तैयार है।लेकिन बिसेसर की भी हत्या गांव के ठाकुर द्वारा कर दी जाती है ।

जातीयता के साथ ही साथ क्षेत्रीयता के दानव को भी "महाभोज" में सर उठाते देखा जा सकता है । सरोहा एक चुनावी क्षेत्र है और

इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं । मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्र तथा सीधे साधे ग्राम वासियों का इससे रिस्ता है । उपन्यास की पूरी कथा-वस्तु इसी क्षेत्र के राजनैतिक समीकरण के बनने और बिगड़ने की कथा है । स्वाधीनता के बाद ब्रिटिश राज का आंतक समाप्त होने पर प्रजातन्त्र की डुगडुगी बजी । नतीजा यह रहा कि प्रजातांत्रिक सरकार सब की सरकार हुई और इसीलिए किसी की न रही । यह हुई उनकी जिनके पास साधन, सुविधाएं और शक्ति थी । यही कारण रहा कि अपने-अपने क्षेत्रों में प्रभावशाली लोग राजनीति के कर्णधारों के रूप में उभरे और उन्होंने अपने इस उभार में हर तरह के हथकंडों का इस्तेमाल किया । इन क्षेत्रीय मठाधीशों पर सरकार की कृपा हुई और ये ही विधायक से लेकर सांसद तक की कुर्सियों पर सवार होते गये ।

क्षेत्रीय आतंक इन क्षेत्रीय मठाधीशों का प्रमुख औजार रहा। अपने आंतक के बूते इन्होंने एक तरह से अपना क्षेत्रीय राज कायम कर लिया । क्षेत्रों के अधिकार को लेकर आपसी संघर्ष भी बढ़े जो आज भी जारी हैं । "महाभोज" का जोरावर सिंह इसी तरह का एक क्षेत्रीय हस्ती है जिसके पास वोट बैंक सुरक्षित है। यही कारण है कि उसका महत्व राजनीति के बड़े सूबेदारों की दृष्टि में कुछ ज्यादा ही है । यह महत्व वोट की राजनीति के चलते पैदा हुआ महत्व है । लखन सिंह को यह भय सताता है कि अगर जोरावर विरोध करेगा या स्वयं चुनाव लड़ जायेगा तो उसके वोटों पर असर पड़ेगा । इसी को बचाने के लिये दा-साहब जैसा नीतिवाक्य बोलने वाला राजनीतिज्ञ उसके सारे अपराधों को छिपाने की उच्च स्तरीय कोशिश करता है और बिसू की मौत को आत्महत्या का मामला घोषित कर दिया जाता है ।

---

§3§ सामाजिक कुरीतियों, विसंगतियों आदि पर दृष्टि

हिन्दुस्तानी समाज परम्परागत रुढ़ियों और अन्ध विश्वासों से काफी दिनों तक जकड़ा रहा है। चूँकि यहाँ की अधिकांश यानि 70 % §प्रतिशत§ जनता गाँवों में रहने वाली थी और आज भी है। इसलिए ग्रामीण जनता का सीधापन उसकी निश्छलता और उसका अन्ध विश्वासी मनोवृति हमारे समाज की खास मनोवृति रही है। हमने पहले भी जिक्र किया कि भारतीय चिन्तकों का एक बड़ा वर्ग सामाजिक कुरुतियों के खिलाफ संघर्ष करता रहा है। लेकिन उन संघर्षों का नतीजा पूरी तौर पर सामने न आ सका है। आज भी उन कुप्रथाओं से संघर्ष की जरुरत उतनी ही है जितनी कबीर के जमाने में थी। नंदिनी मिश्र ने लिखा है - "महाभोज उपन्यास का अध्ययन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह बहुत कुछ अंशों में राजनीतिक उपन्यास ही है लेकिन इसे राजनीतिक वातावरण पर आधारित सामाजिक उपन्यास भी कहा जा सकता है।"[1]

यहाँ इस बात पर पूरी तौर से सहमत हुआ जा सकता है कि "महाभोज" राजनीतिक वातावरण पर आधारित सामाजिक उपन्यास है। उपर से देखने पर ऐसा लगता है कि "महाभोज" पूरा का पूरा राजनैतिक उपन्यास ही है। लेकिन ऐसा ही नहीं यह एक ऐसा उपन्यास है। जिसमें लेखिका की सामाजिक संवेदना का गहरा अहसास लगातार बना रहता है ऐसा लगता है कि इन सारी परिस्थितियों और घटनाओं को जो उपन्यास में अभिव्यक्त हुई है, लेखिका ने एक मानक रूप बनाकर प्रस्तुत किया है। यह मानक रूप उन तमाम हिस्सों से मिलकर बना है जो भारतीय समाज के विभिन्न हिस्से हैं। मतलब यह है कि राजनैतिक परिवर्तन के चलते ही सही, जो कुछ भी परिवर्तन

---

1. नंदिनी मिश्र - मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य, पृ॰-136.

हुआ है वह परिवर्तन समाज का परिवर्तन है।इसे कहीं से भी व्यक्ति अथवा समाज से काट कर नहीं देखा जा सकता है ।

"महाभोज" का कथानक काफी व्यापक है । यह व्यापकता लेखिका के दृष्टिकोण की व्यापकता भी कही जा सकती है । यही कारण कि इसमें समाज को एवं मानव जीवन के विविध पक्षों को उनकी व्यापकता के साथ उभारा गया है । "महाभोज" में आने वाले वर्गों को निम्न भागों में बांटा जा सकता । §1§ समाज के नेता, §2§ पत्रकार, §3§ पुलिस, और कानून §4§ किसान, §5§ नौकरशाही, §6§ क्षेत्रीय दबाव समूह ।

अगर इन सारे वर्गों को मिला दिया जाय तो कहीं से भी भारतीय समाज का खाका अधूरा नहीं लगेगा । आधुनिक भारत जिन वर्गों और शक्तियों पर आधारित है लगभग वे सभी इस उपन्यास में विद्यमान हैं । प्रजातन्त्र के तीनों प्रमुख अंग - व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्याय-पालिका तो हैं ही नगर और ग्रामीण जीवन भी अपनी विशेषताओं के साथ मौजूद है । इन्हीं विशेषताओं में सामाजिक कुरीतियां और विसंगतियां भी आती हैं जिनकी तरफ संकेत लेखिका द्वारा किया गया है ।

आज के समाज में पूँजी का बढ़ता हुआ प्रकोप "महाभोज" में देखा जा सकता है । इस सिलसिले में दत्ता बाबू उदाहरण का काम कर सकते हैं । दत्ता बाबू की सारी पत्रकारिता का लक्ष्य उसी समय स्पष्ट हो जाता है जबकि वे मुख्यमन्त्री से डांट खाकर और आवश्यकता अनुसार अप्रत्यक्ष रिश्वत पाकर वापस लौटते हैं । अखबार का यह सारा मैटर जो दा-साहब के विरोध में जाता है, रातों-रात बदल दिया जाता है और नया मैटर तैयार करते समय दत्ता बाबू अपने ही लिखे विवरण को अपनी नज़रों से नहीं बल्कि दा-साहब की नजरों से देखकर और तौल परख कर तैयार करना चाहते हैं । विसंगति यह है कि दा-साहब वहाँ मौजूद नहीं हैं लेकिन दा-साहब का भूत उन पर काम कर रहा है ।

गांव वालों के भोलेपन का परिचय भी इस उपन्यास में मिलता है यह हमारा सामाजिक दोष ही रहा है कि गांव की निरक्षर जनता दूसरों के यानी थोड़े से पढ़े-लिखे और साधन-सम्पन्न लोगों के बहकावे में आकर सब कुछ मान लेती रही है। सरोहा की जनता के बारे में भी यही बात देखी जा सकती है। हरिजनों के घरों में आग लगाऐ जाने से उपजा गांव का आक्रोश तेजी से बढ़ता जाता है। विरोधी दल के नेता सुकुल बाबू गांव में जाकर बिसू की मौत की घटना को और भी जोरदार तरीके से पेश करके गांव वालों को भड़का आते हैं। सुकुल बाबू के भाषण के बीच में गांव वालों का विरोध भी उभरता है। लेकिन राजनीति के मंजे हुये खिलाड़ी सुकुल बाबू अपनी पद की लड़ाई को बिसू की मौत की लड़ाई घोषित करते हुये गांव वालों के सच्चे हितैषी बन जाते हैं। गांव वालों के बहकने का यह पहला दौर है। दूसरे दौर के सूत्रधार दा-साहब जो अपने बचाव और अपनी विजय के लिये "घरेलू उद्योग योजना" का पासा फेंकते हैं जो सही निशाने पर बैठता है। लेखिका के ही शब्दों में - "चन्द दिनों में ही गांव का सारा माहौल बदल दिया है इस योजना ने। लोगों की बातचीत का विषय भी यही, सोच का विषय भी यही।"[1] फिर दा-साहब भी आकर सरोहा की जनता को अपने शब्दों से गुमराह कर जाते हैं।सरोहा की जनता काफी कुछ इसे स्वीकार भी कर लेती है।इस तरह देखा जा सकता है कि गांव वालों की भलमनसाहत ही उनकी व्यथाओं का कारण है।

उपन्यास की एक नारी पात्र रुक्मा भी ग्रामीण औरतों की कमजोरियों का प्रतिनिधित्व करती है।यह बिन्दा की पत्नी है जिसे बिन्दा को लेकर के हमेशा यह भय सताया करता है कि उसे पुलिस कुछ कर बैठेगी यहाँ तक की एस०पी० सक्सेना जब सरोहा में गवाहों के बयान लेने जाते हैं

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ०-72.

तो बिन्दा के साथ रुक्मा भी आती है । चौकीदार के रोकने पर बिन्दा कहता है - "यह भी आयेगी । छोड नहीं रही है मुझे एक मिनट के लिए अकेला" - खा जायेगा जैसे मुझे कोई । [1] पुलिस का खौफ रुक्मा के दिमाग में इतना छाया हुआ है कि एस०पी० ने बिन्दा को यह पूछने पर कि पिछले दिन बयान देने वह क्यों नहीं आया, बिन्दा के कुछ कहने के पहले ही रुक्मा उसे बचाने के लिये कहती है "शरीर ठीक नहीं था इनका । ताप चढ़ा था, कैसे आते ?" [2] रुक्मा यहाँ झूठ बोलती है और यह झूठ अपने पति को बचाने के लिये बोला जाता है । बिन्दा काफी तेज़ी में बातें करता है और बात यहाँ तक आ पहुँचती है कि एस०पी० सक्सेना सख्त आवाज में उसे डाँटता है । रुक्मा यहाँ भी अपनी कातरता के चलते धाड़मार कर रोने लगती है और उसे बोलने से मना करती है । इस तरह देखा जा सकता है कि रुक्मा व्यवस्था की शिकार एक ऐसी औरत है जो बिसू की मौत के पहले काफी सबल थी । बिन्दा के ही शब्दों में : यह जो औरत है ना साहब, बेहद बदज़बान और बदमिज़ाज है । कोई आदमी बरदाश्त नहीं कर सकता ऐसी और को । पर मैं करता हूँ । बरदाश्त ही नहीं, आदर करता हूँ, साहब ! बाहर से भीतर तक कुन्दन की तरह खरी । बिसू की असली चेली है । पर कैसी सहम गयी है बिसू की मौत के बाद से ! [3]

राजनैतिक भ्रष्टाचार भी वर्तमान समाज़ की एक महत्वपूर्ण विसंगति है जिस पर अलग से कुछ कहने की जरुरत नहीं है । "महाभोज" में आये हुए राजनैतिक भ्रष्टाचार का काफी विस्तार से विवरण पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है । दा-साहब द्वारा मंत्रालयों का अपनी राजनीति चलाने के लिये किया गया विभाजन जनता के और समाज के हक में कहाँ तक है और

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ.-131.
2. वही पृ.-132.
3. वही पृ.-137.

कहाँ तक नहीं है । इस पर सोचने की दा-साहब कोई जरूरत महसूस नहीं करते । मन्त्रालय उनके हाथ के खिलौने हैं जिन्हें वे अपनी मर्जी के मुताबिक मन्त्रियों को उनकी जबान बन्द करने के लिये बाँटते चलते हैं । दा-साहब को अपने विरोधियों और असन्तुष्टों से निपटने में या उनका प्रभाव कम करने में हमेशा सफलता मिलती है तथा वे इतनी कुशलता से काम लेते हैं कि सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे वाली कहावत चरितार्थ होती जाती है ।

(ख) "महाभोज" में मन्नू भण्डारी का सामाजिक चिन्तन - किसी भी रचनाकार को प्रभावित करने वाले कुछ विशेष कारण हुआ करते हैं जिनकी जड़ें उनके परिवेश में तलाशी जा सकती हैं। मन्नू भण्डारी को भी इसका अपवाद नहीं माना जा सकता । मन्नू जी का पारिवारीक संदर्भ देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बचपन से ही उन्हें पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ लम्बी राजनैतिक व सामाजिक चर्चाओं को सुनने का मौका मिला था । जहाँ तक मन्नू जी की शिक्षा दीक्षा का सवाल है वह काफी बिखरी हुई है तथा कई चरणों में सम्पन्न हुई है । हाईस्कूल, इण्टर इन्होंने राजस्थान से, बी०ए० कलकत्ता से एवं एम०ए०, बी०एच०यू० उत्तर प्रदेश से किया इस तरह तीन प्रदेशों में शिक्षा सम्पन्न करने के साथ इन्हें कई तरह के समाज का भी परिचय मिला जिसने निश्चित रूप से इनके अनुभव जगत को व्यापकता प्रदान की होगी । राजेन्द्र यादव से इनका विवाह भी अन्तर्जातीय विवाह था। यह व्यक्तिगत जीवन में इनका सामाजिक विद्रोह था । सामाजिक विद्रोह से मेरा आशय सामाजिक रूढ़ियों से विद्रोह से है । इस तरह इनके जीवन के इन हिस्सों को देखने पर स्पष्ट है कि मन्नू जी सामाजिक अनुभवों के एक विशाल भण्डार के साथ है और कहा जा सकता है कि "महाभोज" में भी उनके यही अनुभव पर्यवसित हुये हैं ।

यद्यपि मन्नू जी की कई रचनायें हैं लेकिन विषय का सम्बन्ध महाभोज से होने के कारण "महाभोज" के ही सामाजिक चिंतन पर अपना ध्यान केन्द्रित करूंगी । फिर "महाभोज" के माध्यम से मन्नू जी के सामाजिक चिन्तन का विश्लेषण इसलिये और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उनकी सबसे ताजा रचना है ।

"महाभोज" की प्रेरणा के बारे में उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में सामाजिक समस्याओं से परेशान होने की बात कही है। स्वभाविक है कि सामाजिक समस्याओं से वही परेशान हो सकता है जिसके जेहन में सामाजिक पक्षधरता हो । उनके पिताजी का आग्रह हमेशा यह रहा कि मन्नू जी "रसोई घर में घुसे रहने की बजाय सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि लें ।" [1]

"महाभोज" उपन्यास में केवल कथा नहीं है और ना ही केवल घटनायें हैं बल्कि बीच-बीच में लेखिका का सामाजिक चिन्तन भी उभरता चलता है । बेहतर होगा कि उसी के आधार पर उनके सामाजिक चिन्तन को समझा जाय । इस सिलसिले में दो चीजों पर गौर करना बेहद जरुरी है एक तो यह कि "महाभोज" किसे समर्पित है ? और दूसरा वह जो "महाभोज के बारे में "महाभोज" में ही मन्नू जी ने कहा ।" "महाभोज" किसी व्यक्ति या किसी साहित्य हल्के को समर्पित न होकर, समर्पित है - दुर्निवार सम्मोहन - भरी उस ख़तरनाक लपकती अग्नि-लीक के लिए जो बिम्ब और बिन्दा ही तक नहीं रुकी रहती ।" [2]

दूसरी बात जो मन्नू जी ने महाभोज की संक्षिप्त भूमिका में कही - "अपने व्यक्तिगत दुख-दर्द, अन्तर्द्वन्द्व या आन्तरिक "नाटक" को देखना बहुत

---

1. डॉ० बंसीधर डॉ० मिश्र - मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ०-११.
2. मन्नू भण्डारी - महाभोज.

महत्वपूर्ण सुखद और आश्वस्तिदायक तो मुझे भी लगता है, मगर जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ़ अपने अन्तर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगने लगता ? सम्भवत: इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो । इसे मैं अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रति ऋण-शोध के रूप में ही देखती हूँ । बाकी प्रत्याशाएं और आरोप तो आपके सामने हैं ।" ।

भूमिका में ही अपने व्यक्तिगत दुख-दर्द के बजाय परिवेश के प्रति ऋण-शोध की घोषणा और साथ में यह तर्क भी कि घर में आग लगी होने के वक्त अपने अन्तर्जगत में विचरण करना अनुचित हुआ करता है, साबित करता है कि मन्नू जी का एक मात्र उद्देश्य "महाभोज" के माध्यम से समाज की उन विसंगतियों को सामने लाना है जो राजनैतिक भ्रष्टाचार के साये में पनपती है । लेकिन मन्नू जी के सामाजिक चिन्तन की बस इतने ही तक इतिश्री नहीं मानी जा सकती । "महाभोज" शोषण के विरुद्ध उठने वाली आवाज का विवरण मात्र नहीं है बल्कि उस जंग का ऐलान भी है जो बिसू की मौत और बिन्दा के कारावास के बाद भी जारी रहेगा । यह लड़ाई उपन्यास के पात्रों की ही लड़ाई नहीं है बल्कि लेखिका की भी अपनी लड़ाई है ।

मन्नू जी ने इस उपन्यास का समूचा चित्रण यथार्थ की गहरी पकड़ के आधार पर किया है । फिर यह भी सही है कि इस उपन्यास की प्रेरणा भूमि बेलछीकाण्ड है जो जनता पार्टी के शासन के दौरान घटित हुआ था । यह घटना उपन्यास की कथा वस्तु तो बनती है लेकिन इसके पीछे काम करने वाला चिन्तन मन्नू जी का अपना सामाजिक चिन्तन है जिसे महज बेलछीकाण्ड

।• मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ•-भूमिका •

तक सीमित नहीं किया जा सकता । अगर ऐसा होता तो उपन्यास का कोई अन्त भी होता । उपन्यास का अन्त बेहद यथार्थ परक है, जो एस०पी० सक्सेना द्वारा जारी रखी गई लड़ाई की सूचना देता है और इसी लड़ाई के बारे में त्रिलोचन सिंह रावत का चिन्तन भी जारी रहता है।अन्त में त्रिलोचन सिंह रावत का चिन्तन कहा जा सकता है कि यह स्वयं मन्नू भण्डारी का ही चिन्तन है जिससे उठा हुआ सवाल आज भी उतना ही जीवन्त और प्रासंगिक है जितना "महाभोज" के लिखे जाने के समय । यह सवाल है-"अपने आस-पास और चारों तरफ़ जो कुछ हो रहा है, उसे आँख मूँदकर स्वीकारते रहें - एकदम उदासीन और तटस्थ होकर ? रह सकता है कोई, रह सकता है कोई भी जीवित आदमी इस तरह ? नहीं रह सके थे, तभी तो एक बहुत बड़ी क्रान्ति के एक छोटे से वाहक बने थे । पर कैसी हुई यह क्रान्ति ? कहीं से कुछ भी तो नहीं बदला ! अब कहाँ से होगी दूसरी क्रान्ति, और कौन करेगा उस क्रान्ति को जो सब कुछ बदल दे ? आज तो परिवर्तन का नाम लेने वाले की आवाज़ घोंट दी जाती है - उसे काटकर फेंक दिया जाता है । एक तरफ पिटे गिने-चुने आदमियों के घुटे गले और सहमी आवाजों से क्रान्ति का स्वर फूट सकेगा अब कभी ?" [1]

कहा जा सकता है कि उपन्यास के माध्यम से अपने सामाजिक चिन्तन को बहस की शक्ल देने वाली मन्नू भण्डारी "महाभोज" तक इसी सवाल से संघर्ष करती रहती है और यही सवाल उनके समाज-परक चिन्तन का निचोड़ माना जाना चाहिए ।

---

1. मन्नू भण्डारी - महाभोज, पृ. 182.

उपसंहार

उपसंहार

मेरी कोशिश रही है कि प्रत्येक अध्याय के अन्त में किसी सिरे तक पहुँचा जाय, लेकिन यहाँ समग्र रूप से किसी निष्कर्ष का निष्पादन जरूरी लगता है। "महाभोज" की सामाजिक चेतना की पड़ताल करते समय आजादी के बाद के भारत का ऐतिहासिक सर्वेक्षण भी करना पड़ा। विशेष रूप से समाज की राजनीतिक चेतना में होती हुई ब्रढ़ोत्तरी और उसके दुष्परिणामों के रूप में भ्रष्टाचार, क्षेत्रीयता और जातीयता सरीकी कुप्रवृत्तियाँ पनपी। इनसे एक तरह का संघर्षपूर्ण माहौल बना जिसके नतीजे में अेलछी सरीखे काण्ड जनतंत्र के गाल पर तमाचे की तरह उभरे। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है जिसका सम्बन्ध बदलते हुए हिन्दुस्तान की एक खास प्रवृत्ति से है जो बाद में भी कई तरह से सामने आई।

इस सच्चाई को मन्नूजी ने अपने उपन्यास "महाभोज" में रेखांकित किया है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि गांवों और शहरों की यह मिलो-जुलो तस्वीर जिसका नाम हिन्दुस्तान है अपने सामाजिक ढांचे की पूरी चरमराहट के साथ "महाभोज" में मौजूद है। महाभोज में उठा महत्वपूर्ण सवाल जो क्रान्ति के स्वर को जनतंत्र के ठेकेदारों द्वारा घोंट दिए जाने से जुड़ा है, न केवल लेखिका या उपन्यास के एक पात्र का सवाल है बल्कि यह सवाल हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र के साये में पलने वाले उस हर व्यक्ति का सवाल है जो अपने को आजाद मुल्क का नागरिक कहता है।

"महाभोज" की सामाजिकता न केवल अपनी पीढ़ी के कथाकारों में श्रेष्ठतम है बल्कि कथा-साहित्य के अब तक की परम्परा में अपना विशिष्ट

स्थान रखती हैं । प्रेमचन्द ने साहित्य के मार्फत राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली जिस सच्चाई को अपनी रचनाओं में आकार दिया, उससे विकसित परम्परा जिसका सवाल आज बार-बार उठाया जाता है और जिसे महज प्रगतिशील कहे जाने वाले साहित्यकारों तक सीमित कर दिया जाता है - की व्याप्ति "महाभोज" में मौजूद है । यह बात कहने का मेरा आधार महाभोज है न कि मन्नू भण्डारी का समूचा साहित्य । संभव है स्वयं मन्नू जी प्रगतिशीलता के चौखटे में स्वयं फिट न बैठें लेकिन महाभोज एक प्रगतिशील और जनसंघर्षों का सहयोगी सांस्कृतिक आंदोलन है, महज एक औपन्यासिक कृति नहीं ।

****

मन्नूजी से एक बातचीत

मन्नू जी से एक बातचीत

प्रश्न - "महाभोज" की रचना के पीछे आपने अपने एक साक्षात्कार में बेलछीकाण्ड को प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। यह घटना सन् '77 की है। उसके बाद भी इस तरह की तमाम घटनाएं सामने आईं। उनपर और महाभोज की समस्या से जुड़ी अन्य समस्याओं पर आपने आगे कोई औपन्यासिक रचना सम्भवत: नहीं दी। इसकी वजह पर थोड़ा प्रकाश डालें तो बात कुछ स्पष्ट हो।

उत्तर - यह सही है कि महाभोज की रचना के मूल में बेलछी काण्ड था। कोई भी घटना बीजरूप में रहती है जिससे शुरु करने का सिलसिला मिल जाता है। बाकी तो तमाम चीजें जुड़ती जाती हैं। और भी घटनाएं हुईं कंझावाला और पंतनगर का गोली गाण्ड। लेकिन सबसे ज्यादा बेलछी काण्ड ही है। बाकी तो सारा माहौल और उसका सम्पूर्ण रूप ही इसके पीछे रहा है। यह कोई जरूरी नहीं है कि हर बार कुछ घटे तो उसे लिखते रहा जाए।

प्रश्न - आपके उपन्यास "आपका बंटी" और "महाभोज" में विषय का दायरा बदला हुआ है। पहले में मध्यवर्गीय तबके की विसंगतियों को तीव्रता से उभारा गया है। एक तरह से यह मध्यवर्ग की समस्या पर केन्द्रित है, जिसमें मां-बाप के तनाव का शिकार

एक निर्दोष बालक बंटी होता है । जबकि "महाभोज" व्यापक राष्ट्रीय सन्दर्भों को लेकर लिखा गया एक सामाजिक-राजनैतिक उपन्यास है । इन दोनों रचनाओं में कोई सम्बन्ध-सूत्र भी है क्या ?

उत्तर - यह सही है कि "आपका बंटी" की समस्या दूसरी है, परिवेश भी दूसरा है । लेकिन यह पूरे देश के संदर्भ में है । महाभोज की पृष्ठभूमि व्यापक जरूर है किन्तु दोनों के बीच कोई तार जुड़ा है ..... माँ-बाप की कशमकश के बीच बंटी सर्वाधिक तकलीफ पाता है जबकि माँ-बाप दोनों बेहद "कन्सर्न" महसूस करते हैं - बच्चे के लिए । इसे जरा बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है । महाभोज में दो दलों की कशमकश है लेकिन पिसती है आम गरीब जनता । लेकिन स्थितियाँ ये हैं कि सबसे ज्यादा संकट गरीब जनता पर है ... दो की कशमकश में कहीं तीसरा आदमी है, जो पिसता है । ठीक यही बात "आपका बंटी" में भी है ..... मतलब यह कि लेखक की दृष्टि "सफरिंग सोल" पर जाती है चाहे दायरा छोटा हो या बड़ा ... बंटी हो या बिसू या दूसरे और इमानदार नौकरशाह । "आपका बंटी" भले ही सीमित परिवेश में है किन्तु उसकी मूल संवेदना "महाभोज" में है ।

प्रश्न - आपके उपन्यास में विरोध का स्वर ऐसा लगता है कि हाशिए पर है ।

उत्तर - ऐसी बात नहीं है ... विद्रोह का स्वर पूरे उपन्यास में मौजूद है । उपन्यास में विद्रोह का सिलसिला जारी रहता है । बिसू की मौत ने बिन्दा को उद्वेलित किया और इसी क्रम में एस०पी० सक्सेना सस्पेंड हो जाते हैं । विरोध या विद्रोह की

चिनगारी कभी खत्म नहीं होती ··· एक जगह दबाइए तो दूसरी जगह फूट पड़ती है जैसा कि मैंने उपन्यास के समर्पण में कहा भी है । और काल्पनिक तरीके से आप क्रांति करवाते भी हैं तो उसका क्या मतलब है जबकि सच्चाई यह है कि विरोध का स्वर अत्यन्त क्षीण और असंगठित है । जबकि प्रभावी धारा भ्रष्टाचार लूट-खसोट की ही है । इस उपन्यास में मेरा मुख्य "कर्नन" इस लूट-खसोट और भ्रष्टाचार की प्रक्रिया को उद्घाटित करना ही था ।

प्रश्न - कुछ लोग महाभोज को "राजनीतिक" उपन्यास मानते हैं ।

उत्तर - वस्तुत: आज की परिस्थितियों में समाज व राजनीति को बिलकुल अलग करके देखा ही नहीं जा सकता । आज के समाज का माहौल ही राजनैतिक है ··· दोनों एक दूसरे में घुले-मिले हैं ।

प्रश्न - आपकी रचनात्मकता की प्रेरक शक्ति संभवत: आपका परिवार रहा है । फिर कई जगहों पर शिक्षा प्राप्त करके आपने अपने अनुभव-जगत को और भी विस्तृत किया । ऐसा लगता है जैसा कि कुछ लोगों ने लिखा है कि आपके पिताजी कांग्रेस से जुड़े थे - कांग्रेस की पराजय के बाद जनता पार्टी की सरकार की आलोचना पर क्या उसका कोई असर है ?

उत्तर - कांग्रेस से हमारे परिवार का कोई रिश्ता नहीं था । मेरा घर सभी पार्टियों की बहस का अड्डा था । घर का काफी आग्रह रहता था कि घर-गृहस्थी से अलग रहकर समाज को जानो । वहाँ के कम्युनिस्ट और जनसंघ सभी के लोग आते थे । मेरे घर

के पीछे शाखा भी लगती थी । पिताजी कांग्रेस के कभी चवन्नियां मेम्बर रहे हों, मैं नहीं जानती ••• मगर आजादी के बाद कांग्रेस से उनका काफी मोहभंग हुआ था । फिर सम्पूर्ण क्रांति का हश्र भी लोगों ने देखा "चौथी दुनिया" के एक लेख में प्रभा दीक्षित ने लिखा है कि "कांग्रेस एक पार्टी नहीं एक संस्कृति है ।" सारी विरोधी पार्टियों के बड़े नेता कांग्रेस से ही निकले हैं ।

प्रश्न - "महाभोज" से गुजरने के बाद बकौल लोचन भैया एक तरह की हताशा पैदा होती है ••• जैसे परिवर्तन की अभी बात करना दूर की कौड़ी लाना है ।

उत्तर - सच्चाई तो यही है । खोटे सिक्के धड़ल्ले से चल रहे हैं । उस ईमानदार आदमी की जो दुर्दशा है वहीं दिखाने की कोशिश की गई है । वस्तुतः यह मोहभंग की स्थिति है । मौजूदा मशीनरी का या तो हिस्सा बनिए या निकल जाइए । या तो अपने आदर्शों-सिद्धान्तों को काट-छांटकर अपने-आपको उसी में फिट कर लीजिए । लोचन की मानसिकता उन सब लोगों की मानसिकता है जो उस दौर से गुजरते हैं ।

उपन्यास में अलग-अलग चीजें हैं । दा-साहब के कैरेक्टर का एक और पहलू हो सकता था । यह बात एक बार दिमाग में आई थी कि दा-साहब को सिरे से "हिपोक्रेट" दिखाने की बजाय उसके अन्तर्द्वन्द्व को भी दिखाना चाहिए था ••• कि शुरु में उसमें भी कुछ "सिन्सियर कन्सर्न" रहे होंगे जो बाद में टूट जाते हैं ।

प्रश्न - "महाभोज" की रचना के पीछे मध्यवर्गीय नजरिया दिखाई पड़ता है ••• ?

उत्तर - उपन्यास की मुख्य "थीम" हमारे वर्तमान समाज की उस प्रक्रिया को उद्घाटित करना है जिसे मैंने "महाभोज" कहा है ।

प्रश्न - समकालीन कथा-लेखन के बारे में आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर - इधर ताजगी आई है । कुछ लोग अच्छा लिख रहे हैं । पुराना "स्टीरियो टाइप" लेखन छोड़ा है लोगों ने । अच्छी रचनाएं भी आ रही हैं । मात्रा के अनुपात में स्तर नहीं है । अगर हर पत्रिका में दो-एक अच्छी कहानी आ जाती है तो मैं समझता कि कुछ अच्छा लिखा जा रहा है । सरोकार तो है कहानियों में ••• लेकिन संवेदना गायब है । यही कारण है कि ये कहानियां प्रभाव नहीं छोड़ती । पहले कहानियां पढ़ते थे तो मन पर एक छाप पड़ जाती थी लेकिन अबकी कहानियां पढ़कर ऐसा कुछ नहीं होता है । स्वयं प्रकाश, संजीव, उदयप्रकाश, राजी सेठ की कुछ अच्छी कहानियां आई हैं । प्रयोग या तलाश जारी है कुछ न कुछ अच्छा निकलेगा ।

प्रश्न - आपका प्रिय कहानीकार ?

उत्तर - कोई एक नहीं ••• कई कहानीकारों की कुछ कहानियां अच्छी लगती हैं ।••• यशपाल, प्रेमचन्द ••••• ।

प्रश्न - विदेशी कथाकारों में ?

उत्तर - मैंने ज्यादा पढ़ा नहीं है ।

प्रश्न - इस समय आप क्या लिख रहो हैं ?

उत्तर - इधर कुछ लिख नहीं रहो हूं । लिखतो हूं रिजेक्ट करतो हूं । मैंने 1979 के बाद कुछ लिखा हो नहीं । "क्रिएटिव फ्रस्ट्रेशन" के दौर से गुजर रहो हूं ।

****

सहायक ग्रन्थ सूची

1. डॉ० बंसीधर, डॉ० राजेन्द्र मिश्र — मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, नटराज पब्लिशिंग हाउस होली मोहल्ला आर्य समाज-मन्दिर के पास करनाल - 1300। (हरियाणा)

2. कृष्ण कुमार बिस्सा "चन्द्र" — साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना दिनमान प्रकाशन, 1984

3. डॉ० विमल शर्मा — साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप संगम प्रकाशन - 1982

4. श्रीमती नंदिनी मिश्र — मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य हिन्दी साहित्य भण्डार 55 चौपटिया रोड, लखनऊ-3.

5. डॉ० सुशीला शर्मा — हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प सिद्धराय पब्लिकेशन्स गाजियाबाद, बुलन्दशहर, दिल्ली - 1982.

6. कु० प्रेमपाल — नई कहानी में वैयक्तिक-चेतना ऐस्कॉर्टसफाउन्ड्स वेलफेयर ट्रस्ट के सौजन्य से, लेखिका द्वारा प्रकाशित सन्-1980.

7. चंचल चौहान — मूल्यांकन - मन्नू भण्डारी की कहानियाँ

8. डॉ0 सच्चिदानन्द राय — हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना अलोपीबाग, इलाहाबाद-1978.

9. डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय — हिन्दी साहित्य - सामाजिक चेतना पांडुलिपि प्रकाशन, ई-11/5 कृष्ण नगर हिन्दी 110051 सन्-1976.

10. मैनेजर पाण्डेय — साहित्य और इतिहास दृष्टि पोपुल्स लिटरेसी, 517 मटिया महल सन् - 1981.

11. क्षमा गोस्वामी — नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास जयश्री प्रकाशन, सन् 1981.

12. डॉ0 लाजपत राय गुप्त — बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, कल्पना प्रकाशन, सन् - 1975.

13. इंद्रनाथ मदान — आज का हिन्दी उपन्यास राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1977.

14. एम0एन0 श्रीनिवास — भारत में सामाजिक परिवर्तन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1974.

15. कमलेश्वर — नयी कहानी की भूमिका

16. प्रेमचन्द — कुछ विचार सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद - 1965.

17. बदरीदास — हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परंपरा, कानपुर ग्रंथम, कानपुर - 1966.

18. बच्चन सिंह — समकालीन हिन्दी साहित्य, आलोचना की चुनौती, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी 1968.

19. डॉ० बेचन — आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास

20. रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी सं० 2022.

21. रवीन्द्र मुकर्जी — सामाजिक विचार धारा सरस्वती सदन, मसूरी सन् - 1961 .

22. विवेकी राय — स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम्य जीवन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1974 .

23. नवल किशोर — आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, प्रकाशन-संस्थान, नई दिल्ली - 1977

24. डॉ० नामवर सिंह — कहानी नयी कहानी लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1973.

25. त्रिभुवन सिंह — हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग प्रचारक संस्थान, वाराणसी - 1973.

26. श्री कृष्णलाल — आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय इलाहाबाद - 1952.

27. श्रीधर शर्मा एवं सरोज गर्ग — आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनैतिक चिंतन ।

28. शम्भूरत्न त्रिपाठी — भारतीय समाजशास्त्र किताब घर, कानपुर सन्-1960.

29. डॉ० भोलानाल गर्ग — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, चित्रलेखा प्रकाशन सन् - 1979.

30. डॉ० ज्ञान अस्थाना — हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ जवाहर पुस्तकालय-मथुरा प्रकाशन सन् - 1981.

****

पत्र - पत्रिकाएं

1. आजकल
2. आलोचना (त्रैमासिक)
3. नवभारत टाइम्स (हिन्दी दैनिक)
4. शिविरा दस्तावेज - 2.
5. समीक्षा
6. सारिका (मासिक)
7. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (साप्ताहिक)

शब्द-कोश

1. हिन्दी साहित्य कोश
2. भार्गव शब्द-कोश
3. आदर्श शब्द-कोश

****